अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रांति का सन्देशवाहक

वार्षिक मूल्य ६) 卐 सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार 卐 एक प्रति २ आना

वर्ष–३, अंक–२ 卐 राजघाट, काशी 卐 शुक्रवार, १२ अक्टूबर, '५६

एक पौराणिक उपाख्यान है कि एक बार नारदजी भगवान् से मिलने गये। द्वारपालों ने यह कह कर कि भगवान् पूजा कर रहे हैं, उन्हें रोक दिया। नारद ऋषि आश्चर्य में भर कर विचार करने लगे—"भगवान् तो त्रैलोक्य के स्वामी हैं। चारों वेद गाकर ब्रह्मा थक गये, लेकिन भगवान् के रहस्य को न समझ सके। ऐसे ये भगवान् किसकी पूजा करते होंगे ? नारद को अपमान की अपेक्षा कुछ कुतूहल ही अधिक हुआ। आखिर आज्ञा मिल गयी। अन्दर जाकर देखते क्या हैं कि भगवान् कई स्वर्ण-मूर्तियों की आरती उतार रहे हैं। नारद सोचने लगे ये कौनसे धन्य देवता हैं, जिनकी भगवान् उपासना कर रहे हैं ? भगवान् ने नारद के मन का कुतूहल समझ कर उत्तर दिया—"नारद ! ये मेरे वे भक्त हैं, जो मेरी नहीं, किन्तु दरिद्रनारायण की पूजा करते हैं, जो नीचों से भी अति नीच की सेवा में लगे रहते हैं और जो प्राणीमात्र के बीच समता का प्रतिपादन करते हैं।" नारद को उन मूर्तियों में स्वयं अपनी मूर्ति भी दिखाई दी। नारद लज्जा के मारे पानी-पानी हो गये।

इहलोक की कामधेनु

(राजाजी)

आम में अच्छा स्वाद है, खुशबू भी, लेकिन इतना ही नहीं, एक और भी रहस्य है। जिस अच्छी चीज़ को हमने प्राप्त किया, उसे बहुत चाहने वाले अन्य किसी व्यक्ति को वह चीज़ देकर यदि हम "द्रव्य-यज्ञ" करें, तो हम एक खास आनंद को अनुभव करते हैं। आम के रस से भी बढ़कर जो अमृत है, वह यही है।

अपने खुद के लिए एक रुपया खर्च करने से जो तृप्ति होती है, उससे बढ़ कर संतोष हम तब पाते हैं, जब हम वही रुपया किसी गरीब को देकर उसकी भूख मिटाते हैं। रुपये के अपने गुण-विशेषों के साथ यह खूबी भी छिपी रहती है।

गीता का एक वाक्य है : "सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः" जिस भगवान् ने दुनिया की सृष्टि की है, उसने इस जीवन के लिए एक कामधेनु भी साथ ही पैदा की है। वह कामधेनु ही यज्ञ है, त्याग है। मनुष्य को पैदा करते हुए उसके साथ ही यज्ञ को भी उत्पन्न करके प्रजापति बोले :

"अनेन प्रसविष्यध्वं एषवो अस्तु इष्ट कामधुक।"

—कामधेनु लो, इसे पालो और जीयो। यह तुमको सब कुछ देगी। जो तुम चाहोगे, सब वह प्रदान करेगी।

आदिकर्ता ने भी यही कहा।

मनुष्य के अपने जन्म के साथ आने वाली भारी सम्पत्ति है, यह यज्ञ। कोई ऐसी वस्तु भी क्यों न हो, जिसे हम चाहते हों, परन्तु उसे चाहने वाले औरों को वह चीज देकर जो आनन्द प्राप्त होता है, वही सच्चा आनन्द है।

"दुनिया की सारी चीजें ईश्वर की हैं, उन्हें वे चीजें देकर खुद उपभोग कीजियेगा।"—ईशावास्य उपनिषद् में ऋषियों ने कहा : "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।"

मनुष्य को यह उत्तम शक्ति ईश्वर ने दी है कि हर चीज़ में जो आनंद छिपा है, उसे पहचान कर उस चीज़ को उचित ढंग से और पूर्ण रूप से वह भोग करे।

लोग हर चीज़ की मालकियत मानते हैं। उसे अपने पास रखने का, खर्च करने का और दूसरों को देकर खुश होने का हक हमें है। पर आखिर में बताये हुए हक को भूल कर उस चीज़ का सर्वोत्तम आनंद ही खो नहीं बैठना चाहिए।

कुछ पंडितजन पूछ बैठेंगे कि : "यज्ञ का मतलब तो आग जला कर उसमें घी डालना है न ? आप इस तरह यज्ञ और त्याग को क्या गलत समझा रहे हैं ? यह क्या भ्रम है ?"

घी हो, या हमारे काम की कोई और चीज हो, आग में डालना आसान नहीं है। दूसरों की, औरों की कमाई हुई चीज़ नहीं, दूसरों से भीख मांग कर प्राप्त की हुई चीज़ नहीं—छह महीने मेहनत करके कर लो अपने खुद के लिए कमाई। वह चीज़ आग में डाल कर जला देना आसान नहीं है।

देवताओं के लिए त्याग करते हैं, ऐसी भावना मन में रख कर, उचित ढंग से देने की आदत डाल कर दूसरों को देना ही यज्ञ है। इस यज्ञ में संपत्ति को खर्च करने की आदत डाल कर त्याग करने की वृत्ति को ही "द्रव्य-यज्ञ" कहते हैं।

महात्मा गांधीजी का हुक्म मान कर विनोबाजी लोगों से ऐसा यज्ञ करने को कहते हैं। दान ही यज्ञ है। वह यज्ञ, जो अत्यन्त आनंद देता है। वह आनंद हम और किसी दूसरे ढंग के खर्च से प्राप्त नहीं कर सकते।

('कल्की' से; अनुवादक, जी. सुब्रह्मण्यम्)

> धन का यह असम बँटवारा देख रहे हो, इन्द्रभूति ! सज्जनों की भी सम्पदा शुद्ध न्यायोपार्जित धन से नहीं बढ़ती ! क्या नदियों को किसीने स्वच्छ जल से बढ़ते देखा है ? नदी की जल-सम्पदा भी बरसात के गन्दे पानी से ही बढ़ती है। व्यक्ति और समाज को परिग्रह से नहीं, धन के असम संचय से नहीं, वरन् अपरिग्रह से ही वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है।
>
> —भगवान् महावीर

> विज्ञान ने भौतिक रूप से जगत् की सारी जनता को परस्पर के निकट-तर तो ला दिया, लेकिन आध्यात्मिक और मानसिक रूप से अभी वह एक-दूसरे से बहुत दूर है।
>
> इसलिए मनुष्य के दिमाग और मन में ही क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है, जो हर एक को परस्पर के प्रति सहिष्णु और कारुणिक बना सके। इसीसे महायुद्धों से अंतिम रूप से छुटकारा पाया जा सकता है।
>
> टोकियो, ४-१०-'५६ —डा० राधाकृष्णन्

एक भाई ने पूछा, "सद्गति कैसे मिलेगी ?" ऐसे सवाल भारत में ही पूछे जाते हैं, क्योंकि यहाँ के लोग इहलोक के जीवन को अपने अखंड जीवन का एक हिस्सा ही समझते हैं। ऐसे जीवन का एक-एक क्षण सेवा में बीते, तो यह मानव-देह सार्थक हो सकती है। न गधा, न भेड़िया सेवा करता है। मनुष्य ही सेवा कर सकता है।

सद्गति क्या है ? जैसा हम करेंगे, वैसा ही पायेंगे। बबूल का बीज बोने से आम्र-वृक्ष नहीं उग सकता। ईश्वर तो निमित्तमात्र होता है। सद्गति, दुर्गति ईश्वर की मर्जी पर निर्भर नहीं है। वह तटस्थ ही रहता है, निमित्त-मात्र बनता है और आपको गति देता है। पर जहाँ का आप टिकट लेंगे, उसी गाड़ी में आपको वह बैठाता है !

बाबा भी किसीको सद्गति नहीं दे सकता। वह सिर्फ विचार समझा सकता है कि जिसको मरने के पहले सद्गति मिली होगी, उसीको मरने के बाद भी मिलेगी और उसकी भी पहचान यहीं पर होगी। अगर आपके चित्त में काम, क्रोध, लोभ, मत्सर आदि भरे हैं, तो सद्गति नहीं मिल सकती। मन शांत और निर्विकार रहे, हृदय प्रेम से भरा रहे, तो आज ही सद्गति है। भूदान-यज्ञ इसीकी राह दिखाता है।

कल्लापालेयम्, कोइंबतूर, ५-१०-'५६ –विनोबा

> मनुष्य एक लाख साल पहले जैसा था, आज वैसा नहीं है। विज्ञान के ज़माने में तो वह तीव्र गति से बदल रहा है। लेकिन न तो बैलों का और न गधों का सत लाखों सालों में बदला हुआ देखा जाता है, न उनका इतिहास ही लिखा जाता है ! पर मनुष्य की विशेषता ही इसमें है कि उसका मन बदलता ही आया है। अतः इसके आगे वही समाज टिकेगा, जो न केवल मन बदलेगा, बल्कि मन से ऊपर भी उठेगा।
>
> अविनाशी, १६–९–५६ —विनोबा

www.vinoba.in

विनोबा का जन्मदिन

(काका कालेलकर)

जब से पश्चिम में विज्ञान-युग, अर्थ-युग और राजनीति-युग शुरू हुआ, तब से धर्म और नीति की प्रतिष्ठा कम हो गयी। मनुष्य का कल्याण विज्ञान की प्रगति के द्वारा होगा और होगा धन का उत्पादन और उसका विभाजन, यही है मनुष्य को सुखी करने का तरीका। लोगों की जानकारी बढ़े, कानून अच्छे बन जायँ और दुनिया के माल-मसाले का शोषण करने की समाज की शक्ति बढ़े, यही मनुष्य के कल्याण के रास्ते हैं, ऐसा इस जमाने ने तय किया और अपना पुरुषार्थ इसी दिशा में बढ़ाया। इस पुरुषार्थ से मानव जाति ने बड़ी प्रगति की। बहुजन को कई ऐसी सहूलियतें मिलीं, जो पुराने जमाने में बड़े-बड़े राजाओं को भी नहीं मिल सकती थी। लेकिन मानव की उन्नति नहीं हुई।

ऐसे जमाने में गांधीजी ने बताया कि करोड़ों लोग योग्य प्रेरणा पाने पर निर्भय बन सकते हैं, द्वेष और हिंसा-वृत्ति पर विजय पा सकते हैं और अहिंसा की मर्यादा में रहकर भी लोकोत्तर त्याग और बलिदान कर सकते हैं।

आज विनोबा भी नास्तिकों के सामने यह सबूत पेश कर रहे हैं कि समाज में, आज के युग में भी, आस्तिकता का उदय हो सकता है। समाज-सेवा के लिए मानवी शक्ति जुटाना अशक्य नहीं है। गरीब-से-गरीब आदमी भी दान और त्याग कर सकता है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने, साधु-सन्तों ने और वीर-महात्माओं ने इस देश में जो नैतिक बल का बीज बोया है, वह आज भी थोड़ी मेहनत करने से उग सकता है। नास्तिक युग में आस्तिकता का जितना उज्ज्वल और विराट् उदाहरण पेश किया जा सकता है, उतना गांधीजी ने और विनोबा ने भारत में पेश करके दिखाया है।

लोग पूछते हैं कि यह नैतिक क्रांति सार्वभौम होगी या इसकी कुछ मर्यादा है? लाखों लोगों का जो हृदय-परिवर्तन हो रहा है, वह करोड़ों का भी हो सकता है, इतना तो कबूल करना ही होगा। तो भी सन् ५७ तक पाँच करोड़ एकड़ जमीन इकट्ठा होने के लक्षण नहीं दीख पड़ते। जो हृदय-परिवर्तन गाँवों में हो रहा है, उसका असर शहरों पर कम हो रहा है और स्वयं विनोबा कहते हैं कि जिस गाँव में करीब सब लोग एक ही जाति के होते हैं, वहाँ पर उनकी नसीहत का असर अच्छा होता है, दान में समग्र ग्राम दिये जाते हैं। जहाँ एक गाँव में अनेक जातियाँ बसती हैं, वहाँ नैतिक उन्नति का प्रभाव पड़ना आसान नहीं है। (जाति-व्यवस्था और जाति-भेद के लिए इससे ज्यादा लांछन कौन-सा हो सकता है!)

अब लोग कहते हैं कि श्री विनोबा ने जो लोकोत्तर वायुमण्डल पैदा किया है उससे लाभ उठा कर अब सरकार को चाहिए कि कानून बना कर उसके द्वारा विनोबा के कार्य की पूर्ति करे। सरकार अगर ऐसा करे, तो वह अनुचित न होगा। सरकार ने अगर ऐसा किया तो उसका हम समर्थन ही करेंगे। लेकिन नैतिक प्रेरणा के द्वारा जो उन्नति सध सकती है, वह कानून के द्वारा किये हुये कामों से नहीं हो सकती। सरकार को सफलता मिलने पर भी अन्त में कहना पड़ेगा—"तत् तत् कर्म कृतं यदेव मुनिभिः तैर तैर् फलैर् वंचिताः" सन्तों ने जो-जो काम किया, वही हमने भी किया, लेकिन जो खूबीदार फल सन्तों को मिले, वे हमारे हाथ में नहीं आ सके।

सरकार अपने ढंग से विनोबा का अनुसरण अवश्य करे। ना करने पर उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। लेकिन सरकार सरकार है, इसीलिए उसकी शक्ति की मर्यादा है।

श्री विनोबा ने भूदान-यज्ञ के साथ बुनियादी तालीम का प्रचार और जाति-भेद उखाड़ देने का कार्यक्रम, दोनों को जोड़ दिया है। यह बहुत ही अच्छा हुआ। इस साधन-त्रिवेणी के द्वारा ही समाज में हृदय-परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक क्रान्ति हम देख सकेंगे।

श्री विनोबा की तपस्या चालू है। चलना ही उनकी प्रधान तपस्या है। उनका कर्मयोग चाहे जितना प्रखर हो, वे असली हैं ज्ञानयोगी। ज्ञानयोगी का तप भी ज्ञानमय होता है। देश में घूमते हुए, देश की परिस्थिति का ज्ञान वे पाते हैं और अपने चिन्तन का लाभ देशवासियों को देते-देते वे ज्ञानयज्ञ चलाते हैं॥

विनोबा के जन्मदिन हम भगवान् से प्रार्थना करें कि उनके देखते ही भारतवर्ष में इस समाज-क्रान्ति का जन्म और उदय हो।

('मंगल-प्रभात' से सादर, ११-९-५६)

सत्य से मुक्ति होती है, स्वाधीनता मिलती है और स्वाधीनता हमें सत्य प्रदान करती है। इसीलिए बुद्ध भगवान् ने अहम् के बंधनों से मुक्ति को महत्त्व दिया था; क्योंकि सत्य उसमें स्वयं ही आ जाता है।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

'पंचायतन'-युग का प्रारम्भ !

(काका कालेलकर)

जब दुनिया में धर्मयुग था, तब भारत के बौद्ध साधु पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर दूर-दूर गये और उन्होंने 'धम्म' का यानी सदाचार का अष्टांगिक मार्ग लोगों को सुनाया। कृतज्ञ दुनिया ने बुद्ध भगवान् की पूजा शुरू की।

जब धर्मशुद्धि का युग शुरू हुआ, तब अरबस्तान और ईरान की नवसंस्कृति ने इस्लाम को तीन खण्डों में फैलाया। जब इस्लाम और ईसाई धर्म के बीच संघर्ष चला, तब नौकायुग का प्रारम्भ हुआ और योरप के दरियायी लोग सारी दुनिया में फैल गये। ईसा मसीह और इंजील का नाम लेकर आधे से अधिक दुनिया उन्होंने जीत ली और अपनी तिजारत फैला कर अपनी जीत मजबूत की।

बुद्ध भगवान् का सिद्धान्त अवैर का था, अहिंसा का था। इस्लाम के मानी हैं, शान्ति। और ईसा मसीह तोस्वयं Prince of Peace शान्ततावादी और भगवान् के पुत्र थे। उनके शान्ति के उपदेश करते और सुनते दुनिया ने युद्धकला चरम कोटि तक पहुँचायी।

अब लोगों का विश्वास धर्मपर से उठ गया है। लोग अब परलोकपरायण धर्मों को छोड़ कर उसकी जगह जीवनपरायण संस्कृति को मानने लगे हैं। अब न्याय, समता, समझौता, साहचर्य और सहयोग का युग-पंच शुरू होने वाला है।

पंचशील के द्वारा अब यह पंचायतन युग शुरू होने वाला है। इसका अंतिम फल है सर्वोदय। इसके लिए अब हमें तैयारी करनी है। यह केवल प्रचार से होने का नहीं। इसके लिए उग्रसे-उग्र चिन्तन की जरूरत है। मानस-शास्त्र, इतिहास और समाजशास्त्र के गहरे अध्ययन के द्वारा सर्वोदय का सर्वव्यापी चिंतन करने से ही भविष्य की तैयारी होगी।

चिन्तन के साथ-साथ परिवर्तन के प्रयोग भी करने चाहिये। बौद्धकाल ने धर्मवीर और यात्रावीर पैदा किये। इस्लाम की प्रवृत्ति ने युद्धवीर और फ़कीर पैदा किये। ईसाई युग में सेवावीर, वाणिज्यवीर और विज्ञानवीर तैयार हुए।

अब इन सब युगों का संबल यानी वीर्य एकत्र करके समन्वयवीर, प्रेमवीर और सत्याग्रहवीर तैयार करने के दिन आये हैं। इसके लिए विराट् परिवर्तन की जरूरत है।

मानस-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन और तीसरा युग-परिवर्तन—यही है इस वक्त का विराट् आदर्श।

इसके लिए विज्ञान से मदद लेनी होगी; और मदद लेनी होगी, संकल्पबल से, संगठन-सामर्थ्य से। लेकिन असली बुनियाद होगी, नव-चिन्तन और नयी तालीम की।

देखें इस युग-कार्य के लिए भगवान् किन-किनसे काम लेता है।

('मंगल प्रभात' से सादर, २-९-५६)

सर्वोदय के बिना चारा नहीं

संसार यदि सर्वोदय को नहीं अपना सका, तो दूसरा अणुयुद्ध मानवता का सर्वनाश कर डालेगा, यह अब स्पष्ट दीख रहा है। दुनिया के समाजवादियों के सामने वह एक बहुत बड़ा प्रश्न है कि व्यक्तिगत पूंजीवाद के स्थान पर जो सरकारी पूंजीवाद (स्टेट् कैपिटेलिज्म) कायम हो जाता है, उससे कैसे बचें? सरकारी पूंजीवाद धीरे-धीरे तानाशाही राज्य भी बन जाता है। व्यक्तिगत पूँजीवाद के स्थान पर सरकारी पूँजीवाद कायम हो जाता है। इन सबसे छुटकारा पाने का एकमात्र मार्ग अब सर्वोदय ही है। अंधविश्वास और रूढ़िवाद से अलग होकर यदि हम बौद्धिक निष्पक्षता के साथ सोचें, तो यह एक अत्यंत प्रगतिशील विचार है, दकियानुसी और प्रतिगामी नहीं। आज हम छोटे-छोटे टुकड़ों, जमातों, वर्गों, सम्प्रदायों और राष्ट्रों में बँटे हैं। अपने उन्हीं चौखटों में रह कर हम अपना उत्थान करना चाहते हैं। परिणामतः दूसरों का पतन अनिवार्य हो जाता है। सर्वोदय सबकी शक्तियों का विकास करके दुःखों का निवारण तथा स्वतंत्रता और समता की स्थापना करना चाहता है। ऐसा समाज अभी कहीं बन तो नहीं सका है, पर उसके लिए साम्यवादी और समाजवादी कार्यक्रम निकम्मा है, क्योंकि वह पूँजीवादी आर्थिक तंत्र से पृथक ही नहीं हो पा रहा है। समाजवाद के नाम पर स्वामित्व ही भिन्न रूपों में बढ़ रहा है और संचालन चंद व्यक्तियों के हाथ में रह जाता है। इससे छुटकारा पाने के लिए सर्वोदय की विकेंद्रित आर्थिक व्यवस्था और विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था ही एकमात्र उपाय है।*

—जयप्रकाश नारायण

* सर्वोदय-अध्ययन-केंद्र, पटना के उद्घाटन-भाषण से।

www.vinoba.in

उड़ीसा के आदिवासी जन-जीवन की दर्दनाक कहानी !

ग्रामदान के बाद कोरापुट : ४.

(गोपबंधु चौधुरी)

आज जिस विषय में चर्चा करने जा रहा हूँ, वह है "अभय," जो हर तरह के शोषण के खिलाफ चलनेवाले मुक्ति-संग्राम के लिए तथा शुद्ध नैतिक वातावरण के लिए अपरिहार्य है। दैवी गुणों में अभय को 'गीता' ने प्रथम स्थान दिया है। कहीं भी अच्छा काम करने के लिए जब हम कदम उठाते हैं, तो पहले हमें अपने मन से भय को हटाना पड़ता है। कमजोरों के समाज में तो इस गुण के विकास के लिए सेवकों को भगीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा। सिर्फ इसीके लिए सेवकों ने अपना शरीर कुर्बान किया है, इसकी मिसालें इतिहास में भरी पड़ी हैं।

शोषकों के फेर में

बहुत दिनों से दो किस्म की सत्ताओं के दबाव में रह कर कोरापुट की गरीब जनता भयभीत हो गयी। एक तो जमींदार का दबाव और दूसरा अंग्रेज-सरकार का दबाव। जहाँ कोरापुट के कन्धे या सौरा (आदिवासी) ने जङ्गल काट कर या पत्थर फोड़ कर एक टुकड़ा जमीन खेती के उपयोग की बनायी कि सरकारी अधिकारी ऐलान कर देते कि वह जमीन फलाने आदमी को दे दी गयी है, अतः उस जमीन पर तेरा अधिकार नहीं है। या अचानक वह सुनता है कि तेरे कर्ज के कारण फलाने साहूकार ने उस जमीन को नीलाम में ले लिया है। वह बेचारा उस जमीन पर से अपनी करुण नजर हटा कर फिर जङ्गल के अन्दर घुस जाता है। दुनिया के हालचाल तथा सरकारी कानूनों की ठीक-ठीक जानकारी न होने के कारण बेचारा कोर्ट-कचहरी में जाने से घबराता है। जमींदार या सरकारी अधिकारी का दबाव थोड़ी देर के लिए बन्द हुआ कि साहूकार उनकी जगह ले लेता है ! वह फिर चालाकियाँ भी बहुत करता है। साहूकार के ऐसे जुल्मों का प्रत्यक्ष दर्शन हमें मिला है। वह गाँव में जाकर थोड़ी धूल उड़ा कर उन्हें निर्वंश हो जाने का अभिशाप दे देता है ! वह गरीब बेचारा न गणित जानता है, न ब्याज का हिसाब। जितने रुपये वह कर्ज़ लेता है, उसका कई गुना अदा कर देने के बाद भी जब तक साहूकार उसे छुटकारा नहीं देता, तब तक वह ब्याज देता ही रहता है !!

इसके साथ अब फिर नये नये शोषक पैदा हो रहे हैं। व्यापारी आकर चावल, माण्डिआ (रागी) आदि की टोकनी जबरदस्ती से उठा कर मनमाने कम दाम दे देता है। किसान बेचारा रोने-चिल्लाने लगता है, तब तक व्यापारी आँखों से ओझल हो जाता है। किसी कार्यकर्ता की नजर अगर इस घटना पर पड़ती है, तो वह दौड़ कर उस व्यापारी का पीछा करता है और कभी-कभी अनाज की वाजिब कीमत उस किसान को मिल जाती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसान तरकारी बेचने के लिए बाजार की ओर जा रहा है। रास्ते में मोटर-वाला अचानक उससे तरकारी की टोकनी छीन कर वाजिब कीमत का एक चौथाई ही पैसा देकर चला जाता है ! यह सब हमारी आँखों देखा जुल्म है ! कंध, सौरा तो सोचते हैं कि उनकी किस्मत में ही यह लिखा है तथा इस जुल्म को सहन करने के लिए ही वे पैदा हुए हैं !

कार्यकर्ता उनके साथ कितना ही मेलजोल बढ़ाता है, उनकी कितनी ही सेवा करता है, तो भी उनमें हिम्मत नहीं आती ! हमें यह भी सुनने को मिला है कि "उस साहूकार के साथ ही तो हमेशा के लिए हमारा ताल्लुक रहेगा, तू तो अभी-अभी कार्यकर्ता बन कर आया है ! तू हमेशा यहाँ रहेगा क्या ?" जब वे सुनते हैं कि कार्यकर्ता वहाँ हमेशा के लिए रहेगा, तो फिर पूछते हैं—"तू फिर एक दिन साहूकार के जैसा तो नहीं बन जायेगा !!"

यह डर कैसे मिटेगा ? जुल्म का प्रतिरोध करने की शक्ति उनमें है, यह सत्य जब वे महसूस करेंगे, तभी उनका बल बढ़ेगा, डर मिटेगा। भाला, धनुषबाण उनके हाथ में है। बन्दूक के सामने उनका कुछ चलने वाला नहीं है, यह वे सहज ही समझ लेते हैं। उन पर जुल्म करने वालों को भी पहले कानून, फिर उसके पीछे-पीछे रहने वाले बन्दूकधारी की मदद मिला करती है, यह देख कर वे घबराते हैं। अभी भी साहूकार द्वारा बन्दूक दिखा कर जमीन बेदखल करने के दृष्टान्त देखने को मिलते हैं। लेकिन जब मनुष्य महसूस करता है कि बन्दूक से भी शक्तिशाली अस्त्र अपने अन्दर है तथा वाजिब हक के लिए अपने को मिटा देना ही अमोघ अस्त्र है, तब उसका डर चला जाता है। उसी कोरापुट में आजादी की लड़ाई में अंग्रेज सरकार की फाँसी और गोली के सामने सैकड़ों द्वारा बलिदान की तथा जेल की सजा भुगतने की हिम्मत देख कर उन्होंने त्याग की शक्ति तथा उसकी सफलता महसूस की। उसके बारे का डर अब बहुतों को नहीं रहा है ! छोटे-छोटे जुल्मों से बचने के लिए कानून तथा सरकारी अधिकारियों से उन्हें कैसे मदद मिल सकेगी, उसके बारे में उन्हें जानकारी देनी होगी। अज्ञान तथा अज्ञानजन्य भय को बढ़ाने में शराब भी मदद करती है। यह भी सही है कि कहीं कहीं इस जुल्म तथा जुल्म से जो मुसीबतें पैदा होती हैं, उन्हें भूलने के लिए लोग शराब का सहारा लेते हैं। इस प्रकार के दुष्टचक्र से उन्हें मुक्त कराना ही सेवक का काम है। सत्यनिष्ठा तथा सत्य के लिए इस देह को न्योछावर कर देने का बोध लोगों में लाने की भावना सेवकों के मन में सदा जाग्रत रहनी चाहिए।

भय हटाने के लिए और एक चीज मदद करती है। वह है, मिलजुल कर रहना तथा एक-दूसरे की मुसीबत में कन्धे से कन्धा मिला कर खड़ा होना। 'आज मेरे पड़ोसी पर जुल्म हो रहा है, कल मुझ पर भी यह जुल्म हो सकता है। अतः पड़ोसी को मदद पहुँचाना मेरा फर्ज़ है'—यह वृत्ति बढ़नी चाहिए। 'मेरी मुसीबत में मेरे पड़ोसी की बुद्धि तथा शक्ति मेरे लिए सहायक होगी'—यह भावना मन में हिम्मत ला देती है। जमीन का लालच दिखला कर साहूकार लोग भेद-सृष्टि करके बेदखली आदि जुल्म किया करते थे। **अब ग्रामदान के बाद यह 'जमीन का लालच' वाला अस्त्र कामयाब हो नहीं सकता।**

तू चलता चल !

(माखनलाल चतुर्वेदी)

भूदान-पथी तेरे चरणों पर युग-बलि है,
तेरे मस्तक पर तिलक कि तेरे सिर बापू की अंजलि है !
जाने तेरे सिर बोझ कौन है पटक गया,
बिन खूँटी के यह जग सूली बन लटक गया,
बापू के जन ढूँढ़े किसको, तू पंथी है,
युग तो 'पद' पाकर भटक गया सो भटक गया !
तू मिलता है दिन एक वहाँ कुटिया खाली,
बस उदासीनता करती उसकी रखवाली !
अधनंगे, भूखे, लिये समस्या जायँ कहाँ ?
तूने हिमगिरि-सा उठा लिया; क्या कहें और ?
व्याकुल जन लिये समस्या बापू को ढूँढ़े
वे रेल-टिकट ले तुझसे कहने आयँ कहाँ ?
महँगे हो गये पदों से अपने साथी सब,
महँगी रेलें, महँगे जहाज, महँगी दुनिया,
चलती हैं मिल की ठाट-बाट से दूकानें,
रोता है बस माधो कोरी, रहमत धुनिया,
दिल्ली की आँखें नहीं और कानों में है जय-घोष भरा,
यह ग्राम-निवासी इधर गिरा, वह जंगलवासी उधर मरा,
बापू की आज जयन्ती है, मेरे उन्नत, मेरे उदार !
हम देख रहे हैं, तेरी गति, तेरे चरणों को बार-बार,
अब नेता से क्या कहें ?—जरा तू ही बापू को दे पुकार,
तू ही अनबोलों की बोली, तू ही अकुलातों की गुहार,
अब तू ही भाग्य लिख वज्रभुजा, तू ही वेदों का पुण्यसार,
बापू तक पहुँचा दे पंथी, जन-जन के अगणित नमस्कार।
पुरुषार्थ हमारा बाना है, मरने से खाक नहीं डरते,
मरते हैं कायर लोलुप पशु, पौरुष के दूत नहीं मरते,
वर्षा में पानी के जैसी, हर बार समस्या रहती है,
कोई अंगुलि-निर्देशक है, जिसके रुख पर वह बहती है।
हिमशैल उठा लेंगे हम, तू ले उठा समस्या आगे आ।
प्राणों की बाजी देश लगा दे तो बस जाग्रत प्यार लगा।
बापू के चरणों में जाकर यह लौट-लौट आती वाणी,
तू चलता चल भूदान-पथी, तुझपर अर्पित निधि-कल्याणी।

('हिन्दुस्तान' से सादर)

www.vinoba.in

नयी तालीम का पच्चर और भूदान का हथौड़ा !

(विनोबा)

बुनियादी शालाएँ समाज में परिवर्तन करने के लिए होती हैं। आज समाज में ऊँच-नीच भाव है, होड़ है, जो जितना कमायेगा, उसका उतना वह हकदार माना जाता है। उसकी जरूरतें नहीं देखी जातीं। इंजीनियर को १०००) रु०, प्रोफेसर को ५००) रु०, बढ़ई को १००) रु०, बुनकर को ६०) रु०, शिक्षक को ४०) रु०, मेहतर को ३०) रु०, खेतीहर मजदूर को २०), औरत को १५) और कतवैये को १०)रु० ऐसे अलग-अलग धंधों के लिए अलग-अलग दाम हमने रख दिये। परिश्रम कम हो और पैसे ज्यादह मिले, ऐसा ही लोग आज चाहते हैं।

एक आदमी की भूख दूसरे की भूख से दुगुनी या तिगुनी हो सकती है, लेकिन वह ५० गुना तो नहीं हो सकती! एक मजदूर स्त्री दिन भर के ८-१२ आना पायेगी, तो प्रोफेसर २ घंटे के ५०) रु० ! फिर इसकी तो १०००) रु० की तनख्वाह बंधी है—चाहे बीच में कितनी ही छुट्टियाँ क्यों न हो जायँ ! अगर उसे कहे कि तुम छह घंटा खेत में काम करो और दो घंटा ही पढ़ाओ, तुम्हें दो रुपया रोज देंगे, तो वह नहीं मानेगा। दो घंटे से ज्यादा अच्छी तरह वह पढ़ा भी नहीं सकता, यह हम मानते हैं। लेकिन बाकी छह घंटे उससे खेती का काम क्यों नहीं लिया जाता ? दो घंटे से ज्यादह उसे पढ़ाने का ही काम दिया ही क्यों जाय ?

यदि कोई हमें कहे कि १५ घंटे गाओ और लगातार गाते ही रहो, २०००) रु० वेतन देंगे, तो हम कहेंगे कि 'ऐसे हम गधे नहीं हैं।' गधा भी तो १५ घंटे चिल्लाना कबूल नहीं करेगा ! आधा-पौन घंटा गा सकते हैं। उससे आनंद मिलता है। जहाँ प्राण-अपान समान होते हैं, वहाँ मनुष्य का क्षय नहीं होता, वृद्धि ही होती है। लेकिन जहाँ यह क्रिया विषम हुई कि क्षय लाजिमी है। इतनी-इतनी देरी तक लगातार गाना-पढ़ाना आदि इस विषम क्रिया के ही कार्य हैं। जंगल का जानवर पूरी जिंदगी जीता है, क्योंकि न वह प्रोफेसरी करता है, न गायन करता है और न लंबे-लंबे व्याख्यान देता रहता है !

खानों में काम करने वालों को भी हवा, प्रकाश; दोनों नहीं मिलते। फिर वहाँ आठ घंटे काम क्यों करायें ? एक घंटा ही काफी है। उनके मकान दस मील दूरी पर रख कर बाकी समय के लिए उन्हें खेती मिलनी चाहिए और मोटर से उनका आना-जाना करवाना चाहिए। पर हम ऐसा नहीं करते, क्योंकि हमें दूसरों के जीवन की कीमत नहीं है। क्या कोई मंत्री अपने लड़के को खानों में काम करने के लिए भेजेगा ? हम समझ नहीं सकते कि किसीको दिन भर ६-८ घंटे तक टाइपिंग का काम भी क्यों करना पड़े ? उसका जीवन हम बिलकुल शुष्क कर देते हैं। कोई रस उसमें नहीं रह जाता। फिर उससे कहते हैं, 'चलो तुम्हें रस सप्लाई करें !' यानी सिनेमा देखो ! दिन भी गया और रात भी गयी ! जैसे जमीन में बोया हुआ बीज दीखता नहीं, पर उसमें अंकुर फूटते हैं, उसी तरह निद्रा भूमि है, अन्तःकाल का स्मरण, बोया हुआ बीज है। अंतिम स्मरण यदि सिनेमा आदि का रहा, तो स्वप्न में वे ही दृश्य दिखेंगे ! हम तो इतना भूदान का काम कर रहे हैं, लेकिन सोते समय भूदान का भी चिंतन फेंक देते हैं ! उसकी चिंता तक नहीं करते, अन्तःस्वरूप में लीन हो जाते हैं और दो मिनिट में भगवान् का स्मरण करते-करते उसकी गोद में चले जाते हैं।

'टाईम् इज मनी !'

आज का सूत्र है, 'टाइम इज मनी'—पैसा ही समय है। थोड़ी-सी देर के लिए डाक्टर आता है और अपनी बड़ी फीस ले जाता है। बीमारों को देखते समय 'टाइम इज मनी' कहेगा, पर टेनिस खेलने में दो घंटे लगा देगा ! ५० बीमारों को जल्दी-जल्दी देख कर 'राउण्ड' पूरा करेगा, तो परिणाम भी राउण्ड (गोल) ही हो जायेगा ! उस समय अपने घर वालों से भी बात नहीं करेगा, क्योंकि "टाइम इज मनी" है ! इस तरह लोगों ने नये-नये सूत्र बना लिये हैं।

एक फ्रेंच लेखक ने एक वकील की विनोदी कहानी लिखी, जिसके पास एक गरीब अपनी केस लेकर गया। वकील ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया और कहा, "इस केस में कुछ नहीं दीखता।" गरीब ने बात समझ ली और दो मुहरें सामने रख कर कहा, "मैं आपको यह चश्मा दे रहा हूँ; जिससे आप इस केस को देख सकेंगे।" इस तरह पैसे का स्पर्श होते ही इन लोगों का ज्ञान फूट निकलता है, जैसे बछड़े के मुंह का स्पर्श होते ही गाय के दूध की धारा फूट निकलती है !

पच्चर और हथौड़ा

इतनी हीन आज की समाज-रचना है। बुनियादी तालीम को इसे ही तोड़ना है। यह अर्थ समझे बिना कोई बुनियादी तालीम का समर्थन करता है तो या तो वह मूर्ख है या आज की समाज-रचना कायम रख कर बुनियादी नहीं, कोई दूसरी ही तालीम देना चाहता है ! आज हर जगह हमने दर्जे बना लिये हैं। बड़ा आदमी या ऊँची जात का आदमी कुर्सी पर बैठेगा और गरीब जमीन पर। ये सब दर्जे भी हमें खतम करने हैं और रचना ही बदलती है। यह रचना ज्ञानी ही ज्ञान-प्रचार से बदलेगा; जिसका एक अंग है, बुनियादी तालीम एवं दूसरा अंग है, बाबा की भूदान-यात्रा। बुनियादी तालीम में सब समान होंगे, सब काम करेंगे। विद्यार्थी और शिक्षक भी झाड़ू हाथ में लेंगे। लोगों ने इसे 'झाड़ू की तालीम' नाम दिया है, तो वास्तव में यह घूरा तालीम को ही साफ करेगी ! बुनियाद का पच्चर वह ठोकेगी और ऊपर से बाबा के भूदान के हथौड़े का प्रहार होगा। दोनों मिल कर आज के समाज के टुकड़े कर देंगे।

(२२-९-५६, प्रातः प्रवचन)

मार्क्स-गांधी और विनोबा

(शंकरराव देव)

मार्क्सवाद और गांधीवाद के बीच बहुत बड़ा फासला तो है, लेकिन एक मामले में दोनों में पूरी समानता है कि दोनों को ही यह दुनिया बदलनी है। सबको सुख और शांति प्राप्त हो, यह मार्क्स से समान गांधीजी भी चाहते थे। इस दृष्टि से, मैं कहूँगा कि, मार्क्स भी सर्वोदयी ही था !

लेकिन दोनों के साधन और अन्वयार्थ में मौलिक मतभेद हैं। मार्क्स ने एक मानदंड रखा और मटेरियल इन्टरप्रिटेशन आफ हिस्ट्री का भौतिक सूत्र पेश किया। गांधीजी का आध्यात्मिक सूत्र है, "स्पिरिच्युअल इन्टरप्रिटेशन ऑफ हिस्ट्री।" दोनों केवल भाष्यकार ही नहीं थे, कर्मयोगी भी थे। मार्क्स ने कहा था कि आज तक अनेक दार्शनिकों ने विश्व और व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों और उद्देश्यों का विश्लेषण किया और उसका अर्थ ढूँढ़ने की कोशिश की, लेकिन हमें भाष्य ही नहीं करना है, विश्व ही बदलना है। गांधीजी के बारे में भी यही कहा जा सकेगा।

प्रकृति से परे जो तत्त्व है, उसे मार्क्स स्वीकार नहीं करता, पर गांधीवाद मानता है कि शरीर से परे भी एक वस्तु, आत्मा है। यही आत्मतत्त्व साक्षात् सिद्ध करना है एवं व्यक्ति और समाज के जीवन में आत्मिक अभ्युदय लाना है। एक शरीर को मानता है, तो दूसरा आत्मा को। गांधीजी की मान्यता थी कि आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हुआ कि इस दुनिया का परिवर्तन हुए बिना नहीं रहेगा और वर्ग-विहीन, परंतु संघर्ष-रहित समाज कायम होगा। उन्होंने कहा था कि मुझे यह समाज बदलना है। अतः सबको सुख, शांति और आत्मप्राप्ति हो; इसलिए समाज की धारणा ही बदलनी चाहिए। वर्ग-संघर्ष गांधीवाद को स्वीकार नहीं है। सत्य और अहिंसा से ही मानव परम सुखी हो सकता है, यह गांधीवाद का आग्रह है। इसके लिए उन्होंने जीवन को सत्य और अहिंसा की प्रयोगशाला मान कर आजीवन उसके प्रयोग किये एवं जगत् को सतत मार्गदर्शन भी किया। उन्होंने एक सफल प्रयोग किया, विनोबा दूसरा प्रयोग कर रहे हैं। सत्य पर अधिष्ठित अहिंसक समाज-रचना की स्थापना की परंपरा गांधीजी ने शुरू की, यह हमारा सद्भाग्य है। भारत के भाल पर इससे अधिक ही देवकार्य लिखा हुआ है, ऐसा विश्वास रख कर ही हम विनोबा-जयंती मनायें।

(काटोल, मध्यप्रदेश के एक भाषण से।)

पावन प्रसंग

लगभग अस्सी वर्ष के एक बूढ़े महाशय ने बाहर से आवाज लगायी : "भूदान-कार्यालय यही है ?" उन्हें भीतर बुलाया गया। उन्हें आदाता समझ कर कोई शिकायत हो, तो पूछा। बूढ़े ने काँपते स्वर में बताया :

"तीन वर्ष पूर्व जब संत विनोबा मगेर आये थे, तो मैंने अपनी थोडी-सी जमीन में से एक बीघा भूदान में देने का संकल्प किया था। उसके बाद आज तक मैंने दानपत्र नहीं दिया। मेरा दानपत्र लेकर मेरे जीते जी जमीन बाँट दीजिये। न जाने कब मर जाऊँगा ! अब हमारा क्या ठिकाना। विनोबा के ऋण से उद्धार कीजिये !" वृद्ध का गला रुंध गया !

मुँगेर। —रामनारायण सिंह

www.vinoba.in

विनोबाजी के साथ श्री अच्युतजी

(निर्मला देशपांडे)

गत सप्ताह श्री अच्युतरावजी पटवर्धन तथा अन्य अतिथियों के आगमन के फल-स्वरूप जीवन के कई पहलुओं पर विनोबा और इन लोगों के बीच महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ हुईं। अच्युतजी ने शिक्षण की चर्चा के सिलसिले में एक सवाल पूछा :

"शिक्षा के जरिये मानव का विकास किस तरह होता गया ? मानव-संस्कृति का विशाल क्षितिज ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा प्रकाशित होता है। उसकी चाभी हम अपने विद्यार्थियों को कैसे दे सकते हैं ? उनमें जिज्ञासा निर्माण कर, उनकी उपार्जन की शक्ति कैसे बढ़ा सकते हैं ?"

विनोबाजी ने कहा—"शिक्षा-पद्धति में सबसे बड़ा सुधार यह करना होगा कि गुरु-शिष्य-संबंध पूर्ववत् प्रस्थापित करने होंगे। शिष्य को गुरु-सेवा करते-करते ज्ञान हासिल करना चाहिए, फिर गुरु चाहे उसे लकड़ी चीरने का काम दे, पानी भरने का काम दे या निजी सेवा का ही काम दे ! गुरु जो भी काम दे, शिष्य को वह करना चाहिए। उसका उद्देश्य 'गुरु-सेवा' ही होना चाहिए। गुरु को Exploit (शोषण) करने की या उसे ज्ञान-प्राप्ति का साधन मानने की वृत्ति नहीं होनी चाहिए।"

अच्युतजी ने कहा—"कर्म द्वारा शिक्षण की पद्धति में कर्म को ही प्रधानता मिलेगी और उसमें से सिर्फ लुहार, बढ़ई आदि ही पैदा होंगे, ऐसा डर कइयों को लगता है ?"

'कर्म' केवल द्वार है !

विनोबाजी—"कर्म द्वारा शिक्षण-पद्धति" में कर्म का अर्थ है, द्वार। हम द्वार के जरिये घर के अंदर प्रवेश करते हैं। द्वार और घर अलग-अलग चीजें हैं। हम दरवाजे पर ही सतत खड़े नहीं रहते हैं, बल्कि घर में प्रवेश करके अपना काम करते हैं। उसी तरह शिक्षण में कर्म दरवाजा है, न कि घर !"

अच्युतजी—"गुरु-सेवा में एक बहुत बड़ा धोखा नजर आता है। दुनिया का आज तक का अनुभव यह है कि गुरु-शिष्य-संबंध से संप्रदाय और शिष्यों में परस्पर-ईर्ष्या, द्वेष आदि पैदा होते हैं। इसे किस प्रकार टाला जाय ?"

विनोबाजी—"संप्रदाय-निर्माण न हो, इसलिए गुरु को अपनी कोई भौतिक इस्टेट् नहीं रखनी चाहिए। कोई संस्था खड़ी की कि फिर उसके लिए जमीन, मकान संपत्ति आदि की व्यवस्था भी की जाती है—और फिर उसमें ये सारे दोष आ जाते हैं। इसलिए कोई संस्था ही खड़ी नहीं करनी चाहिए।

गुरु-शिष्य-संबंध

"गुरु के सामने उपनिषद् के ऋषियों का आदर्श होना चाहिए, जो अपने शिष्यों से कहते थे—'हमसे जो अच्छी कृतियाँ होंगी, उन्हींका तुम अनुकरण करो, दूसरी कृतियों का अनुकरण मत करो।' यानी, चाहे हमारी सद्भावना हो, तो भी हमारी सभी कृतियाँ सद्कृतियाँ ही होंगी, यह संभव नहीं है ! इसलिए हे शिष्यगण ! तुम हमारी सद्-कृतियों का ही अनुकरण करो। इसका मतलब यह है कि गुरु की कृतियों में कौनसी कृति अच्छी है, यह पहचानने की जिम्मेवारी शिष्य की ही मानी जाती थी ! शिष्य में उतनी विवेचक-बुद्धि होनी चाहिए, ऐसी अपेक्षा की जाती थी। गुरु हमेशा यही चाहता है कि उसका शिष्य उससे आगे बढ़े। अगर गुरु अपने शिष्य को अपने से भी ऊँची सतह पर नहीं ले जायगा, तो उसके ज्ञान का ही क्षय होना आरंभ हो जायगा। शिष्य हमसे आगे बढ़े, इस प्रकार गुरु की जो इच्छा होती है, उसीमें गुरु की मुक्ति तथा शिष्य का विकास निहित है। 'अव्यक्त' मूर्त में से व्यक्त होता है, लेकिन मूर्त की भी मूर्ति बनायी, तो फिर आसक्ति, अंधापन आदि दोष आ जाते हैं। इसलिए हमें मूर्त की सेवा करनी चाहिए, मूर्ति की पूजा नहीं करनी चाहिए। मिसाल के तौर पर हमारी पदयात्रा लीजिये, जो भूदान-आन्दोलन का मूर्त रूप है। लेकिन अगर हम संस्था बनाते, तो उसे मूर्ति का रूप आ जाता और वह स्थिति-प्रिय बन जाती।"

फिर विनोबाजी ने अपनी शिष्यावस्था का वृत्तान्त बताते हुए कहा—"१९१६ में मैं घर छोड़ कर हिमालय जाने के लिए निकला। बीच में काशी में छह हफ्ते रहने का सोचा था। मैं जब काशी पहुँचा, तो वहाँ पर बापू के एक भाषण की जोरदार चर्चा चल रही थी। उस भाषण का वृत्तान्त पढ़ते ही मुझ पर उसका बहुत असर हुआ। फिर मैंने बापू को एक लंबा खत लिखा, जिसमें कई सवाल भी पूछे थे। बापू ने उसका जवाब एक छोटे से पत्र के द्वारा दिया। फिर मेरा उनके साथ पत्र-व्यवहार चलता रहा। बापू ने मुझे लिखा कि 'आपने जो सवाल उठाये हैं, उनकी चर्चा पत्र के जरिये नहीं हो सकती है। इसलिए अगर आप यहाँ आयेंगे, यहाँ का काम देखेंगे, उसमें हिस्सा लेंगे, तो अच्छा होगा।" फिर मैं हिमालय जाने के बजाय साबरमती गया। वहाँ पर आरंभ में ७-८ महीने तक मेरा करीब-करीब मौन ही चलता रहा। कइयों को लगता होगा कि शायद यह शख्स गूंगा हो। बापू जो-जो काम बताते गये, मैं चुपचाप करता गया। इस बीच उनसे दस-पाँच वाक्यों से अधिक बोलना नहीं हुआ था। वे प्रति दिन शाम को घूमने जाते थे और उस वक्त कइयों के साथ उनकी चर्चा चलती थी। मैं नियमितता से घूमने जाता था और चर्चा सुनता था।

"एक दफा एक शख्स ने बापू से पूछा कि 'गीता में एक स्थान पर कहा गया है कि 'कर्म श्रेष्ठ है', तो दूसरे स्थान पर 'कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है', ऐसा वाक्य है। इसका क्या अर्थ ?' बापू ने उससे कहा कि "प्रथम वाक्य की भाषा गौण है तथा दूसरे की श्रेष्ठ है।" उस भाई को यह विचार जँच नहीं रहा था। वह कह रहा था कि वाक्य एक ही किताब का एक वाक्य गौण और दूसरा श्रेष्ठ है, यह हम कैसे तय करें ? मैं चर्चा सुन रहा था। मैंने सिर्फ एक ही वाक्य कहा कि 'गीता के इस प्रथम वाक्य की भाषा भक्ति की है तथा दूसरे वाक्य की भाषा ज्ञान की है।' यह सुनते ही बापू खुश होकर बोले, 'बस, तुमने बिल्कुल ठीक कहा। मैं ठीक शब्द ढूढ़ रहा था, लेकिन मुझे मिला नहीं। दो भाषाओं में गौण, श्रेष्ठ आदि का कोई सवाल ही नहीं है। दोनों श्रेष्ठ हैं, लेकिन एक भक्ति की भाषा है, तो दूसरी ज्ञान की।"

"उस दिन से बापू ने मेरे साथ चर्चा करना शुरू किया। फिर एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, 'तू खेत में काम कर, उससे तेरी सेहत भी सुधरेगी।' तो फिर मैंने वह काम शुरू किया। बीच में एक साल के लिए उनसे इजाजत लेकर संस्कृत के अध्ययन के लिए वाई (सातारा) गया था। एक साल के बाद ठीक उसी दिन, उसी क्षण मैं उनके सामने हाजिर हुआ। वे तो उस बात को भूल भी गये थे। लेकिन इसका उन पर बहुत असर हुआ। उन्हें लगा कि यह शख्स सत्य-निष्ठ है। कुछ दिनों के बाद उन्होंने मुझे वर्धा भेजा। १९१६ से मेरा जीवन ऐसा ही चलता रहा। वे कहते थे और मैं करता था। उनके बताये हुए काम करने में मुझे पूर्ण समाधान था। बापू की यह महानता थी कि उन्होंने मुझे विचार की पूरी आजादी दी थी। लेकिन मेरी ओर से भी एक बात यह थी कि उन्होंने मुझे जो भी काम करने के लिए कहा, वही मैं करता गया।"

करेले की कहानी

साबरमती के जीवन का एक रोचक किस्सा बताते हुए विनोबाजी ने कहा—"मुझे बचपन से करेले की तरकारी भाती नहीं थी। मेरी माँ हमेशा मुझसे कहती थी, 'विन्या ! तेरी सारी शान करेले के सामने खत्म हो जाती है रे ! वहाँ पर तू हार जाता है।' मैं कहता था कि 'दुनिया में पैदा हुई हर तरकारी खाने की मुझ पर जिम्मेवारी थोड़ी ही है ?' पर आश्रम में तो हमेशा करेले की तरकारी बनती थी, क्योंकि करेला सस्ता था। उस समय बापू खुद परोसते थे। बापू ने मेरी भी थाली में करेले की तरकारी परोसी। मैंने वह जल्दी खाली। बापू दुबारा परोसने आये। उन्हें लगा कि इसकी थाली में तरकारी नहीं है, वह इसे बहुत पसंद आयी होगी। इसलिए उन्होंने पूछा, "और चाहिए ?" जब उन्होंने ऐसा पूछा, तो मुझे लगा कि अब 'हाँ' कहना ही चाहिए। तब से मुझे करेला खाने का अभ्यास हुआ।

"शिष्य को गुरु का हृदय जानने के लिए गुरु की भाषा आनी चाहिए। मैं जब बापू के पास गया, तब वे मुझसे हिंदी में बोले। मैंने देखा कि उन्हें हिंदी ठीक नहीं आती है। उसी समय मैंने तय किया कि मुझे गुजराती सीखनी चाहिए। फिर मैंने १५ दिन में गुजराती सीख ली। मैं हमेशा बापू के साथ गुजराती में ही बोला करता था और अब भी जब मैं उनके साथ बोलता हूँ, तो गुजराती में ही बोलता हूँ !

आज तो प्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति बदल कर कम-से-कम अप्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति चलनी ही चाहिए। इसके लिए ग्रामों में से पक्ष-भेदों का निवारण अनिवार्य रूप से हो जाना चाहिए। २१ साल के ऊपर के सभी लोगों की एक आम सभा बने और वे गाँव का कारोबार चलाने के लिए एक सर्वसम्मति से एक समिति चुनें। सर्वसम्मति और पक्षरहित ग्राम-संगठन इसकी अनिवार्य शर्त है। ग्रामसभा के मार्फत ऊपर के चुनाव हों। इस प्रकार चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होने चाहिए। सत्ता का विकेंद्रीकरण और गाँवों को अधिकाधिक सत्ता देना आवश्यक है।

—विनोबा

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

१२ अक्टूबर सन् १९५६

लोक-संकल्प की शक्ती

(वीनोबा)

गाय का गोश्त सस्ता मील्गा, तो भी हींदू अुस् नहीं आय्गा। सूअर का गोश्त सस्ता मील्, तो भी मुसल्मान अुस् नहीं आय्गा; क्योंकी अेक मानसीक संकल्प हो गया है्। तो, लोक-संकल्प में जो ताकत है्, अुसका भान गांव क् लोगों को हो जाय्गा, तो गांव-गांव में जमीन बंट्गी, गांव-गांव का परीवार बन्गा, मालकीयत मीट्गी, ग्रामोद्योग खड़् होंग्, वकील लोगों को काम नहीं मील्गा। व् बाबा स् कहेंग्, जब स् आपका भूदान शुरू हुआ है्, लोग आपस में झगड़त् नहीं है् और हम बेकार हो गय् है्! बाबा क्या कह्गा? अुन्हें पांच अेकड़ जमीन द्गा और कह्गा की हम दान देन् को तय्यार है्। अब आप कृपा करक् लंगोटी लगा कर काश्त करन् तय्यार हो जाओीय्।

भूदान क् द्वारा हम सब लोगों की संकल्प-शक्ती बढ़ाना चाहत् है्। संकल्प स्, जो हम चाहत् है्, वही होगा। हमारी अीच्छा क् अीलाफ कुछ नहीं हो सकता। यह ताकत भगवान् ने मनुष्य की आत्मा में रखी है्। हम दीन है्, दुर्बल है्, हमस् क्या होगा, अैसी भावना मत रखीय्। हम जड़ नहीं है्, चेतन है्। चेतन में सार् जड़ को रूप देन् की शक्ती होती है्। जो रूप हम सृष्टी को देना चाहत् है्, वह हम दे सकेंग्। अेक दफा हमने कहा था की हीमालय को हमने अुत्तर में रखा है्, अीसलीअे वह अुत्तर में है्! हम चाहें तो अुस् दक्षीण में फेंक सकत् है्। अेक भाअी ने पूछा की यह कैस् होगा? हमने कहा, अरे, हम तीब्बत में गय्, तो हीमालय दक्षीण में फेंका गया! फीर हीमालय की क्या हीम्मत है् की वह अुत्तर में रह्! मैंने दक्षीण में रहना पसंद कीया है्, अीसलीअे वह अुत्तर में है्। तो, मनुष्य में यह शक्ती है् की वह सृष्टी को आकार दे सकता है्।

हृदय बड़ा चाहीअे। यानी छाती चौड़ी चाहीअे। यह नहीं होगा, तब तक मनुष्य का अुद्धार नहीं होगा। अीसलीअे भूदान-आंदोलन जनता की शक्ती बढ़ा रहा है्। लोग अीस बात को समझेंग्, तो गांव-गांव में वे अुठ खड़् होंग्, अपनी जमीन, अपनी संपत्ती, बुद्धी गांव की सेवा में समर्पण करेंग्। अपने-अपने ग्रामराज्य नीर्माण करेंग् और अैस् ग्रामराज्य जब बनेंग्, तब स्वराज आय्गा। जो सत्ता दील्ली में है्, मद्रास में है्, वह गांव-गांव में बंटनी चाहीअे। तभी सच्चा स्वराज्य आय्गा।

अीसीका नाम सर्वोदय है्। यह हमारा प्रेम का काम है्। समझा-बूझा कर अुसमें देना है्, जबरदस्ती नहीं देना है्। जो आज जमीन नहीं देता, वह अीसलीअे की वह कल देने वाला है्। अीसलीअे अुसकी नींदा नहीं करनी चाहीअे।

(कावेरीपट्टनम्, सेलम, १०-८-'५६)

शुद्ध आनंद की शर्त: संयम और बँटवारा

(विनोबा)

ईश्वर ने प्राणीमात्र के लिए सुख ही सुख पैदा किया है। आनंद निज रूप ही होता है। बिना आनंद के एक क्षण भी कोई जीवित नहीं रह सकता। उसका भान नहीं होता, लेकिन अनुभव होता है। खुली हवा में हम साँस ले रहे हैं। हमें आनंद हो रहा है और अनुभव भी, लेकिन उसका भान नहीं हो रहा है। जब नाक बंद होगी या किसी कमरे में हम बंद होंगे, तभी उसका भान होगा। इस तरह हम आनंद से बिलकुल परिवेष्टित हैं। जिन क्षणों में दुःख नहीं है, वे सब आनंद के क्षण हैं। दुःख का अनुभव याद रहता है, चौबीसों घंटों के आनंद का भान नहीं होता, क्योंकि आनंद ही हमारा स्वरूप है। बल्कि इस गोबर में पड़े हुए जंतु को भी आनंद प्राप्त है, क्योंकि वह उसका स्वरूप ही है।

लेकिन गौरव आनंद की प्राप्ति में नहीं, आनंद की शुद्धि में है। कोई बीड़ी पीता है और आनंद अनुभव करता है, तो कोई उपवास से। एक शख्स हमारे पास बीड़ी पीते-पीते ही आये! हमें बड़ी खुशी हुई कि देखो, यह भाई अपने आनंद में शर्म को भी भूल गया, आनंद में एकाग्र हो गया! तो आनंद किसीसे भी पैदा हो, स्वरूप उसका एक ही है। लेकिन जितनी जीवन-शुद्धि होगी, उतना ही आनंद भी शुद्ध होगा, इसीलिए मनुष्य-देह आनंद की शुद्धि है, न कि आनंद की प्राप्ति।

कुछ वेदांती भी कहते हैं, 'आनंद-प्राप्ति बड़ा ध्येय है।' लेकिन वे विचार को समझे नहीं हैं, क्योंकि उसकी प्राप्ति के लिए कोई परिश्रम ही नहीं करना पड़ता है। जो आनंद के लिए कोशिश करेगा, वह दुःख ही पायेगा। लेकिन सब लोग इसकी प्राप्ति में लगे हैं और परिणाम रोने में पाते हैं। 'परिशुद्ध आनंद मेरे जीवन में है', ऐसा कहने वाला मनुष्य दुर्लभ ही है। सारा नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि इसी चिंता में है कि शुद्ध आनंद कैसे प्राप्त हो?

शुद्ध आनंद का लक्षण है कि वह अपने को ही नहीं काटेगा। जो आनंद अपने को ही काटता है, वह शुद्ध नहीं है। बीड़ी पीने वाला बड़े आराम से बीड़ी पीता है। लेकिन थोड़े दिनों में फेफड़े उससे खराब हो जाते हैं। डॉक्टर तो उससे कैन्सर की भी संभावना बताते हैं। इस तरह बीड़ी पीने का आनंद, आनंद को ही काटता है। सीधी-सादी व्याख्या है कि जो आनंद अपने को ही काटता है, वह शुद्ध नहीं है और जो अपनी आत्महत्या नहीं करता है, वह शुद्ध आनंद है। रात का जागना, सिनेमा देखना, उपन्यास पढ़ना, शराब पीना आदि; इनसे जो आनंद होता है, वह आनंद को ही खो देता है। इसलिए आनंद के साथ संयम आता है। तरकारी में थोड़ा ही नमक अच्छा लग सकता है या प्रमाणबद्ध शक्कर ही मिठाई में अच्छी लगती है। एक गरीब भाई ने लॉटरी में हजार रुपया पाया, तो आनंद के धक्के से ही वह मर गया। इस तरह आनंद ने ही आनंद को काटा, इसलिए आनंद को एक मर्यादा में ही रखना पड़ता है। लोग कहते हैं कि उत्पादन बढ़ेगा, तो आनंद बढ़ेगा। लेकिन अमेरिका में उत्पादन बढ़ा है और आनंद घटा है। वहाँ आत्महत्याएँ बढ़ रही हैं।* इसलिए आनंद की सीमा को पार करके आनंद भोगने की कोशिश आनंद को और जीवन को ही काटती है। संयम आनंद का प्राण है, इसलिए संयम की मात्रा और संयम की युक्ति संयम के शिक्षण द्वारा समाज को देनी चाहिए। आनंद की शुद्धि संयम के साथ ही आती है।

आनंद की शुद्धि की दूसरी शर्त है, दूसरों को उसमें सहभागी करना। सामने भूखा खड़ा हो और हम मिष्टान्न चख रहे हों, तो उसमें आनंद नहीं होगा। अकेले भोगने से भी आनंद अपने आपको ही काटता है।

आज हमारे जीवन में दुःख भरा है, इसकी बारबार शिकायत करते हैं, क्योंकि हमने आनंद के भोग में संयम नहीं रखा और दूसरों की भी परवाह नहीं की। इसीलिए जीवन आज दुःखी है। आनंद-शुद्धि के ये दो बड़े सिद्धांत, कि "बाँट कर भोगो" और "संयम से भोगो," अगर हम अमल में नहीं लाते हैं, तो दुःख की ही प्राप्ति होगी।

(मधुकरै, कोइंबतूर, २९-९-'५६)

---

* अमेरिका की ता० ३ अक्तूबर की खबर है कि अनेक अमेरिकी 'सुखदावटी' को खा-खाकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर रहे हैं या बुरी तरह बीमार पड़ रहे हैं। १ करोड़ और २० लाख लोग उसका इस्तेमाल इस साल करेंगे और डेढ़ करोड़ डालर उस पर खर्च करेंगे, ऐसा अनुमान है। यद्यपि पहले यह मानसिक रोगियों के लिए उपयोग में लायी गयी थी। लेकिन मानसिक तनाव और अत्यधिक परिश्रम (Overwrought) के कारण ही उन्होंने इसका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। —'हिं० टाईम्स'

www.vinoba.in

चावल के बारे में सरकार की दुमुँही नीति

(जो. कॉ. कुमारप्पा)

आज तक जहाँ के लोग चावल की मिल क्या चीज है, यह जानते ही न थे, वहाँ कुछ परोपकारी सज्जन सरकार की सहायता से उन्हें दाखिल करने पर तुले हुए हैं। हमारी सरकार दोनों डगरियों पर हाथ रखने की अंग्रेजों की नीति में बिलकुल सिद्धहस्त है। अंग्रेज लोगों ने हिन्दुस्तान के विश्वस्त (ट्रस्टी) होने का दावा करते-करते उसे अच्छी तरह लूट लिया। आज वही काम अधिक जोरों से चालू है, पर उसका नैतिक स्तर और अधिक गिर गया है, क्योंकि यह गलत काम हमारे तथाकथित "नेताओं" द्वारा किया जा रहा है।

सन्तुलित खुराक के अभाव में हमारे लोगों को केवल अपर्याप्त आहार ही नहीं मिलता, बल्कि उन्हें मिलने वाली खुराक में जो कुछ पौष्टिकता मौजूद रहती है, वह भी उनसे छीन ली जाती है। हाथकुटे चावल में पौष्टिक भाग अधिक मात्रा में मौजूद रहता है, पर मिलों में अत्यधिक पॉलिश किया हुआ चावल याने केवल स्टार्च या पिष्टमय पदार्थ रहता है। अच्छे घर का आदमी अपनी खुराक में घी, दाल, शाक, दूध आदि पदार्थ शामिल करता है, जिससे पॉलिश किये हुए चावल की पौष्टिकता की कमी कुछ अंश में वह पूरी कर सकता है। पर एक देहाती को अपनी नित्य की खुराक में उपर्युक्त चीजें दाखिल करना कतई संभव नहीं। उसे कठिन परिश्रम भी करना पड़ता है, इसलिए उसकी शरीर की छीजन की भरपाई होना जरूरी है। इसके लिए सदियों से वह हाथकुटे चावल पर अवलम्बित रहता आया है। यह वस्तुस्थिति हर कोई जानता है, सरकार भी जानती है। इसलिए खास कर चुनावों के समय उसकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए ये लोग हाथ-कुटाई को बढ़ावा देने का स्वांग रचते हैं। वे अपने कई नव-निर्माण केन्द्रों के असहाय संचालकों के मार्फत धान की हाथकुटाई का प्रचार करते हैं।

पर इतने ही से उनके जबर्दस्त समर्थकों का—पूँजीपतियों का—समाधान नहीं होता। हाथकुटे चावल में पौष्टिक अंश अधिक रहने से उसमें कीड़े जल्द लग जाते हैं और चूहे भी उस पर जल्दी हमला करते हैं। इसलिए बड़े पैमाने पर हाथ-कुटा चावल बना कर नहीं रखा जा सकता। यदि उसकी पौष्टिकता का पूरा-पूरा फायदा उठाना हो, तो वह अपनी जरूरत के मुताबिक समय-समय पर ताजा ही कूट लेना चाहिए। यदि बड़े पैमाने पर बनाना हो, तो उसे पॉलिश करके सफेद बनाना भी जरूरी है, ताकि वह लम्बे समय तक खराब न हो सके। इस प्रकार मिल और हाथकुटाई के हितसम्बन्ध एक-दूसरे के बिलकुल विरुद्ध हैं। जब इनमें संघर्ष पैदा होता है, तब गरीबों के हित को ताक पर रख दिया जाता है। इसीमें सरकारी करामात देखने मिलती है। वह एक ही मुँह से दो बातें करती है। वह खण्ड-विकास अधिकारियों की एक कान्फ्रेंस बुलाती है और उसमें धान के कुटाई का जोरदार समर्थन कराती है। पूंजीपतियों के अखबार इस बात का जोरदार प्रचार करते हैं और इस प्रकार जनता को सरकार हाथ-कुटाई के पक्ष में है, ऐसा आभास निर्माण किया जाता है।

इधर इस प्रकार जोरदार प्रचार जारी रख कर उधर सरकार धीरे से अपने दोस्तों को—पूंजीपतियों को—चावल की मिलें खोलने के लाइसेंस दे देती है। इससे देहात की हजारों स्त्रियों का ज्यों-त्यों अपनी गुजर-बसर करने का जरिया ही छिन जाता है और वे बेकार बन जाती हैं।

सरकार की इस दुहरी नीति के विरुद्ध इक्की-दुक्की आवाज उठती भी है, तो उसकी परवाह कौन करता है ? यदि सूबों की सरकारों से जवाब तलब किया जाता है, तो वे केन्द्रीय सरकार की तरफ अंगुली-निर्देश करती है और केन्द्रीय सरकार संविधान की कुछ खामियों की ओर अंगुली-निर्देश कर खुद को असहाय बताती है। इस प्रकार गरीबों को चूसने का कार्यक्रम बे-रोक-टोक जारी रहता है।

मानो इस जले पर नमक छिड़कने के लिए ही सरकार यह कहती है कि देहाती स्वयम् मिल का छड़ा चावल ही पसंद करते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए मीलों लंबी सफर तय करते हैं! तो यदि लोगों में किसी चीज के बारे में अज्ञान है, तो वह अज्ञान दूर करने को जिम्मेवारी क्या सरकार की ही नहीं है ? क्या कोई समझ-दार माता अपने बच्चे को शर्करावगुंठित कुनैन की गोलियाँ, बच्चे को मीठी लगती हैं और उनके लिए वह मचल रहा है इसलिए चाहे, जितनी तादाद में उसे वह खाने देगी ? यह तो अपने कर्तव्य से च्युत होना और एक गुनाह ही है।

इस प्रकार की दलीलों से जब सरकार को निरुत्तर होना पड़ता है, तब वह झट संविधान की ओर इशारा कर अपना पिण्ड छुड़ाती है। तब हम इस दूषित और विषाक्त संविधान को ही क्यों न रद्द कर दें ? क्या हमें इसके लिए काफी समय नहीं मिला ? जब यह संविधान बनाया जा रहा था, तभी हमने इसे "एक विद्यार्थी द्वारा लिखित प्रबंध" कह कर इसकी निन्दा की थी, क्योंकि इसमें अपने देश की परिस्थिति का कोई विचार न कर अन्य देशों के संविधानों की उदात्त लगने वाली बातें इकट्ठी कर ली गयी थीं और अब, करीब दस साल के बाद, संविधान के जनक डॉ. आंबेडकर स्वयम्, इस संविधान को जला देना चाहिए, ऐसा कहने लगे हैं।

ऊपर जिस परिस्थिति का वर्णन किया है, उसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण हम देते हैं। कुछ हफ्तों पहले मद्रास की सरकार ने केन्द्रीय सरकार की सूचनानुसार अपने राज्य में ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देने की एक योजना बनायी। उसके अन्तर्गत मन्त्री श्री. भक्तवत्सलम् ने खंड-विकास अधिकारियों की एक कान्फ्रेन्स बुलायी और उन्हें हिदायत दी कि वे धान की हाथ-कुटाई का खूब प्रचार करें। इसी समय इन्हीं मन्त्री महोदय के अधिकार में कल्लुपट्टी में एक चावल की मिल खोलने का लाइसेन्स दिया गया। क्या इस प्रकार एक ही समय में परस्पर-विरुद्ध बातें करना छल नहीं है ? क्या यह जनता को बरगलाना नहीं है ? उन्हें कब तक इस प्रकार धोखा दिया जा सकता है ?

भूदान को जाति-भेदों पर भी प्रहार करना है !

(विनोबा)

एक बहन ने बताया कि इस घर में धोबी आने से डरता है, वह आ नहीं सकता। ऐसे स्थानों में हम नहीं ठहरते हैं, जहाँ किसीके आने की मनाही हो। पेड़ के नीचे ही रहना हम पसंद करते हैं।

तमिल भाषा का अब एक अलग प्रांत बनने जा रहा है। इससे बड़ी ताकत बन सकती है। लेकिन वह तभी बनेगी, जब सब परस्पर के साथ प्यार से रहेंगे। जातिभेद-वर्गभेद आदि के रहते यह प्रांत तो छिन्न-विच्छिन्न हो जायेगा। यहाँ धोबी या अछूत अगर नहीं आ सकता है, तो वह तमिलनाड़ की उन्नति के लक्षण नहीं माने जायेंगे। फिर ब्राह्मण-अब्राह्मण, हरिजन-गैरहरिजन आदि का संघर्ष ही इसमें से खड़ा होगा। सब एक-दूसरे को हीन समझेंगे, तो सभी हीन बन जायेंगे। इससे स्वभाषा का भी गौरव नहीं बढ़ेगा और अंग्रेजी भी सिर पर बैठेगी।

हम जब इस तरह किसी घर में किसीके भी प्रवेश के निषेध की बात सुनते हैं, तो हमारा दिल छिन्न-विच्छिन्न हो जाता है। पुराणों में सुंदोपसुंद की कहानी है! दोनों प्रेम से रहते थे, लेकिन तिलोत्तमा के निमित्त से दोनों लड़ पड़े और परस्पर की गदा से दोनों ही मर गये! इस तरह आपस के भेद-भावों का नतीजा होता है। तमिल भाषा का उपयोग इसीके लिए फिर ही शुरू हो जायगा! अखबारों में हम देखते ही हैं कि परस्पर पर प्रहार चलते हैं! इलेक्शन भी आ ही रहे हैं। जहाँ नया प्रांत बना कि छोटी-छोटी चीजों के लिए भी लोगों के झगड़े चलेंगे और सब माँग करेंगे कि फलाँ नदी का पानी हमको नहीं मिलता है, फलाँ नदी का पानी उसको मिलता है, आदि! इस तरह परस्पर में भेद-भाव और छूतछात देखते हैं, तो हृदय में ज्वाला प्रकट होती है। हमारे साथ हरिजन भी रहते हैं। किसी घर में बाबा ने प्रवेश किया, तो उसके साथ सभी ने प्रवेश किया! घर जितना भ्रष्ट हो सकता था, हो गया! हम उसे जितना भ्रष्ट कर सकते हैं और कोई नहीं कर सकता। एकसाथ खाना, ऊँच-नीच भाव दूर करना, जातिभेद मिटाना, धर्मभेद न मानना, सबको एक समझना; यह सब बाबा करता है। ऐसे शख्स को घर में रखना याने घर को आग लगाना ही तो है! यह शख्स उसके घर में ही खायेगा और भरी सभा में उसकी निंदा भी करेगा कि उसके यहाँ धोबी नहीं आ सकता, हरिजन नहीं आ सकता, आदि।

पता नहीं, दुनिया में कब चिनगारी गिरेगी और कब ज्वाला भड़केगी। लेकिन फिर भी तीन हजार साल पहले के जमाने में ही आज हम रह रहे हैं और ये जातिभेद-वर्णभेद आदि मान रहे हैं। पानीपत में जब अहमदशाह अब्दाली ने रात में देखा कि मराठों की सेना के निवासों पर अलग-अलग आगें जल रही हैं, तो उसे आश्चर्य हुआ। पूछने पर उसे मालूम हुआ कि अलग अलग रसोई पक रही है, परस्पर के हाथ का कोई नहीं खाता है! तब उसने कहा, "अब मैंने जीत लिया!" और मराठे हार भी गये, जबकि मराठों की सेना तीन लाख थी और अब्दाली की कम।

यह भूदान क्या है ? यह कोई कीमत नहीं रखता—अगर देश में ऐसे जातिभेद और भिन्न-भिन्न भेद बने रहें! ऐसे भूदान से कुछ होने वाला नहीं है। परस्परों के लिए जो द्वेष आज है, वही तो हमको मिटाना है।

(गदमपट्टी, कोइंबतूर, २८-९-'५६)

---

www.vinoba.in

सूतांजलि के प्रसार की सामूहिक योजना : २.

(कनु गांधी)

पिछले लेख में हमने पहली चीज यह सुझायी थी कि हर माह की तीसवीं तारीख को जगह-जगह सामुदायिक सूत-कताई का सिलसिला शुरू किया जाय।

दूसरा एक और कार्यक्रम, खासकर देहातों के लिए, रखा जा सकता है कि राष्ट्रिय दिनों के अवसर पर भी दो घण्टे सामूहिक कताई करें और उसी दिन कती हुई गुण्डी सूत्रदान में दें। प्रत्येक समूह-कताई के बाद १५ मिनिट की प्रार्थना की जाय और बाद में १५-२० मिनट तक बापू और विनोबा के प्रवचनांश या सर्वोदय-साहित्य से कुछ अंश पढ़े जायँ। इससे विचार-प्रचार भी सहज हो सकेगा।

परंतु समूह-कताई में प्रतिष्ठित कार्यकर्ता योग दें, तभी यह सिलसिला जारी रह सकेगा। स्पष्ट है कि इस तरह की समूह-कताई से कातन वालों को एक तरह की प्रेरणा मिलेगी, उनका उत्साह बढ़ेगा, श्रेणी-भेद मिटेंगे, आपस में भ्रातृ-भाव और प्रेम बढ़ेगा।

समूह-कताई द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में चलने वाले चरखों पर, उनकी गति-विधि पर और हालत पर भी नजर रखी जा सकेगी एवं समय पर जरूरी सुधार भी हो सकेंगे।

तीसरा सुझाव यह है कि २ अक्टूबर से—याने बापू के जन्म-दिन से बापू-निर्वाण श्राद्ध-दिन, १२ फरवरी तक १३३ दिन हर एक कातने वाला रोज के कम-से-कम ५ तार सूतांजलि के लिए और ५ तार सूत्र-दान के लिए देने का संकल्प करे। इससे भी विनोबाजी की कल्पना का सूत्र-कूट जगह-जगह पर आसानी से खड़ा हो सकेगा।

सूतांजलि

विनोबाजी ने कहा, "सूतांजलि की सारी शक्ति 'प्रति मनुष्य एक गुण्डी' के मंत्र में है। इससे गुण्डी देने वालों का एक वैचारिक परिवार बन जायेगा।" अतः सूतांजलि में एक ही गुण्डी लेने का आग्रह रखना चाहिए। एक गुण्डी ही हर एक दे, तो कितने लोगों ने समर्पण किया, यह भी मालूम होगा।

सूत्रदान : शोषण-विहीन समाज बनाने का कार्य परिश्रम से उत्पन्न किये गये धन से ही बढ़ाना योग्य है और हर एक मनुष्य आसानी से श्रम कर सके, ऐसा एकमात्र साधन चरखा है। अतः उस पर काती हुई गुण्डी जो जितनी देना चाहे, सूत्र-दान में दे सकेगा। इसमें से एक गुण्डी तो सूतांजलि में देनी ही है और उसके अलावा जितना और देना चाहें, दें।

विनोबाजी ने कांजीवरम् में चार दिन के उपवास के प्रारम्भ में अपने हाथ का कता सूत सर्व-सेवा-संघ को अर्पण किया और कहा :

" हम चाहते हैं कि सूतांजलि के अलावा सूत्र-दान का भी कार्यक्रम सर्वत्र जारी करें। हमारी संस्थाओं का काम सूतांजलि, सूत्रदान, श्रमदान और संपत्तिदान से ही चले। यह हमारे लिए बड़ी लाभदायी बात होगी। मैं प्रति दिन आधा घण्टा सूत कातता हूँ। इस तरह साल भर की अपनी ३१ गुण्डी (याने ६२ गुण्डी, क्योंकि हमारा सारा सूत दुबटा रहता है।) मैं सर्व-सेवा-संघ को आप सब लोगों की साक्षी में, धीरेन्द्रभाई के पास, ईश्वर-स्मरण करके समर्पित करता हूँ। इस तरह सूत्रदान का कार्यक्रम सारे देश में चले, यह हमारी इच्छा है।"

इस प्रकार सूत्र-दान में हर व्यक्ति अपने श्रम से कता हुआ जितना सूत देना चाहे, समर्पण करे। अपेक्षा यह है कि रचनात्मक संस्थाओं में काम करने वाले हर एक कार्यकर्ता तथा श्रद्धालु प्रतिदिन आधा घण्टे का समय सूत कातने में दे कर उतना सूत सूत्रदान में दे ही।

इन सब कामों के लिए जरूरी संगठन की आवश्यकता है। अ० भा० सर्व-सेवा-संघ ने यह कार्य मुझ पर छोड़ा है। लेकिन सभी मित्रों की सहायता और सहयोग के बिना यह कार्य पूरा नहीं हो सकता। ३६ करोड़ नागरिकों के देश के लिए इस साल १५ लाख गुण्डियाँ संग्रहित करना आसान बात है, लेकिन हमारा उद्देश्य, जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, सिर्फ गुण्डियाँ इकट्ठा करना ही नहीं है, बल्कि उसके द्वारा समाज में एक विशिष्ट विचार-दर्शन का प्रसार करना भी है।

सूतांजलि और सूत्रदान के कार्य को संगठित करने की जिम्मेदारी हरएक प्रदेश में कार्यकर्ताओं को सौंप दी गयी है। अपने-अपने प्रदेश की परिस्थिति को देखते हुए वे प्रदेशों में जिला, तहसील, मण्डल और छोटी-छोटी इकाइयाँ संगठित करें, जिससे कि उनका काम सरल हो। हर एक प्रदेश में भूदान-समितियाँ, रचनात्मक संस्थाएँ, गांधी-निधि तथा कस्तूरबा-निधि के कार्यकर्ता तथा उनका संगठन, सर्वोदय-विचार के कार्यकर्ता, शिक्षण-संस्थाएँ, स्थानीय लोकल-बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, उनसे संबंधित प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ तथा ग्राम-पंचायतें हैं। इन सभी का सहयोग इस काम में लिया जा सकता है।

संगठक अपने प्रान्त का लक्ष्यांक पूरा करने के लिए, प्रचारार्थ अपने प्रान्त के अखबारों का भी सहयोग प्राप्त करेंगे।

प्रान्त में कितने चरखे चालू हैं, कितने नादुरुस्त पड़े हैं, कातना जानने वालों की संख्या कितनी है, कितने लोग कातते हैं, पूनी का बन्दोबस्त क्या है, बुनाई का बन्दोबस्त क्या है, ये सब बातें कार्यकर्ताओं की मदद से संगठक जान ले और उचित कार्यवाही करे। **नये सीखने वालों को सिखाने का प्रबंध भी वे करें।**

कार्यकर्ता हर स्कूल में जायँ, शिक्षकों से बातें करे और सर्वोदय-सूतांजलि का हेतु समझाये। बाद में उस स्कूल में कितने लड़के अच्छा कातना जानते हैं, यह जान ले। उन लोगों को भी पुनश्च आसान भाषा में सर्वोदय-सूतांजलि का हेतु समझावे और राष्ट्र-पिता को सूतांजलि द्वारा श्रद्धा व्यक्त करने की प्रेरणा दे।

हम आशा करते हैं कि इस पुनीत कार्य में सबका पूर्ण सहयोग मिलेगा और पूज्य विनोबाजी की कल्पना का "सूत्रकूट" प्रत्येक प्रान्त में जगह-जगह पर हम सब खड़ा कर सकेंगे। (समाप्त)

भाषानुसारी प्रदेशों का आदर्श

(विनोबा)

भाषानुसारी प्रांतों का हम अगर ठीक से उपयोग करें, तो उससे बड़ा लाभ है। लेकिन यदि भारत के दूसरे हिस्सों से अलग समझने की वृत्ति उसके द्वारा बनी, तो उससे बहुत नुकसान है। जो अनेक भेद हमारे अन्दर पड़े हैं, वे मिटाने में तमिल भाषा एक साधन-रूप बन कर सबके हृदयों को जोड़ सकती है। इससे तमिलनाड और देश, दोनों की शक्ति बढ़ेगी।

एक जमाने में दक्षिण से उत्तर में विचार-प्रवाह चलता था और उससे पहले उत्तर से दक्षिण की ओर। तमिल-साहित्य का आरंभ बौद्ध, जैन और वेद-साहित्य से हुआ, जिसकी परंपरा उत्तर से दक्षिण की ओर आयी। 'कुरल' पर संस्कृत का पूरा असर है। जिसे उपनिषद्, वेद और महाभारत का परिचय हो, वह उसके सूक्ष्म विचार सहज समझ सकता है। धर्मार्थ-काम रूप से विवेचन करने की कल्पना उत्तर भारत की है। इस तरह विचारों का आदान-प्रदान दोनों ओर चलता रहा। यह विचार-गंगा ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाती रही। "उत्तर" (नॉर्थ) का अर्थ संस्कृत में है, 'अधिक ऊँची दिशा।' ऐसे शब्द बनाने वाले हिमालय की तराई में रहते थे, इसलिए 'ऊँची दिशा' को 'उत्तर' नाम दिया गया। तमिल में पश्चिम दिशा को 'मेरक्कु' कहते हैं, परंतु उस शब्द का अर्थ है, ऊपरवाली। (मेर=ऊपर की, क्कु=दिशा)। उन्होंने 'नॉर्थ' को 'ऊपरवाली' समझा, इन्होंने 'वेस्ट' को, क्योंकि इधर नदियाँ पश्चिम से पूर्व में आती हैं और आपके पश्चिम में ऊँचा पर्वत भी था।

शंकर, रामानुज, मध्व, निंबार्क भी दक्षिण से उत्तर गये। इस तरह ऊपर-नीचे विचार-प्रसार का यह खेल चलता रहा। ये सब खेल पाँच-पाँच, छह-छह सौ साल चले। पर अब विज्ञान के जमाने में इतनी देर नहीं लगेगी।

हम चाहते हैं कि तमिलनाड विचारों से संपन्न और हृदय से एकात्म बने। तब फिर दक्षिण से उत्तर में विचार-प्रवाह शुरू होगा। शंकर, रामानुज ने संस्कृत में लिखा, इसलिए वे विचार को उधर बहा सके। मातृभाषा में लिखना भी एक उपकार है, पर संस्कृत में लिखना दूसरा उपकार था। जरूरत दोनों की रही, इसलिए अब, इस जमाने में, आपको हिंदी सीखनी चाहिए, जिससे आप उत्तरवालों के हृदय तक पूर्ववत् पहुँच सकें।

'तमिल' शब्द का अर्थ है 'मधुर।' अतः इसका माधुर्य बढ़ा कर ही आप तमिलनाड को एकरस बना सकते हैं। आप भाषाओं से झगड़े भी कर सकते हैं और प्रेम भी। तो झगड़े की सहूलियत आपको काट देनी चहिए एवं प्रेम की वृद्धि करनी चाहिए इस तरह तमिल भाषा का प्रेम-रस दूसरों को आप दें और आर्थिक-सामाजिक विषमता दूर करें, तो उससे एक ताकत बनेगी। तब आप अखिल भारत के साथ एकरूपता धारण करेंगे और सद्विचार का, प्रेमविचार का हमला उन पर कर सकेंगे। शंकराचार्य ने "तमिलनाड या केरल सब से श्रेष्ठ है," यह कह कर 'दिग्विजय' नहीं की, बल्कि "अद्वैत," "अभेद" आदि-बता कर ही दिग्विजय की थी। ऐसे ही अभेदमय विचार का हमला आपको करना है। आपको यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि अगर मेरे हृदय में सद्विचार हो, तो आपके हृदय में भी वह होना ही चाहिए। गलत विचार के हमले कभी नहीं टिक सकते। अतः भक्तिविचार और प्रेमविचार ही हम फैलायें।

(वनवासी, सेलम, १८-८-'५६)

---

www.vinoba.in

भारत की पुरातन ग्राम-सभाएँ

(पं० सूर्यनारायण व्यास)

भारतवर्ष ग्राम-प्रधान देश है, इसलिए यहाँ ग्रामों का महत्त्व स्वाभाविक है। हरेक नगर ग्रामों से घिरा हुआ होने के कारण यहाँ की नागरिक-संस्कृति और ग्राम-संस्कृति में अन्तर भी नहीं रहा है। आज भी जिन कथा-वार्ताओं, व्रत-उपवासों, धार्मिक-परम्पराओं का नगर में प्रसार है, वे ग्रामों में भी व्याप्त हैं, चाहे उनकी भाषा भिन्न हो या आचार-व्यवहार भिन्न हो। धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं में भी इतना अधिक साम्य है कि उनमें कोई बड़ी विभाजन-रेखा नहीं खींची जा सकती। देश के पुरातन इतिहास को देखा जाय, तो ग्रामों की स्थिति बहुत सुधरी हुई मिलती है, ग्राम-जनों की आंतरिक व्यवस्था हर प्रकार से स्वतंत्र रही है। **किसी भी शासन में उनके अधिकारों का अपहरण नहीं किया गया था।** कौटिल्य-काल में ग्रामों के समूह को 'नगरों' के साथ यद्यपि सूत्रबद्ध किया गया, पर उनके विकास की सुविधाएँ हर प्रकार से थीं। उनकी सरलता और सात्विकता निर्विकार बनी रहे, नैतिकता में बाधा न आने पाये तथा उन्हें धूर्त और कुटिलों का शिकार न होना पड़े, इसका सतर्कतापूर्वक ध्यान रखा जाता था। **ग्राम-व्यवस्था में शासन का हस्तक्षेप नहीं होता था।** उनकी परम्पराएँ अक्षुण्ण रखी जाती थीं। उनके मत का मूल्य भी शासन मानता था। ग्रामों का निर्माण, जलाशय, धर्मशाला और सुरक्षा की व्यवस्था में शासन का हाथ रहता था।

पंचायतें पुराने समय में ग्राम-सभा कहलाती थी और बहुत समय पूर्व उनका पर्याप्त विकास हो गया था। देश के अधिकांश भागों में यह सभा ही अपना वर्चस्व रखती थी। इस सभा की शासन-पद्धति बहुत सुव्यवस्थित थी। वेद-ब्राह्मण-उपनिषद-काल में ग्रामसभा, उसके प्रमुख और उनके अधिकारों का सम्मान-सहित उल्लेख है। ग्राम-अधिष्ठाता को 'वैदिक' और पाणिनी के काल में 'ग्रामनी' कहा जाता था। ग्रामसभा के प्रमुख को व्यापक अधिकार रहते थे। उसकी आज्ञा का सम्मान किया जाता था। गणतंत्र के समय उसके निर्णयों की उपेक्षा नहीं की जाती थी। राजतंत्र के युग में भी उनके निर्णयों का अधिकार इतना महत्त्वपूर्ण माना जाता था कि सीधे राजा के पास पहुँचे हुए मामले भी ग्रामसभा और उसके अध्यक्ष के पास पुनर्विचारार्थ भिजवा दिये जाते थे।

ग्रामसभा में ग्राम के प्रत्येक प्रौढ़ जन को सदस्यता का अधिकार प्राप्त होता था और उन्हें 'ग्रामवृद्ध' कहा जाता था। इनका विचार अथवा निर्णय निष्पक्ष, जाति-वर्ग और सम्प्रदाय के भेद से रहित, और केवल ग्रामहित को महत्त्व देने वाला रहता था। महाकवि कालिदास ने आज से दो हजार वर्ष पूर्व उज्जैन जैसे समृद्ध और सुसंस्कृत नगर के प्रौढ़ जनों को भी मेघदूत में **'ग्राम-वृद्ध'** कह कर ज्ञापित किया है। ग्राम के प्रमुख का स्थान परम्परापूर्वक चलता रहता था। यदि प्रमुख के पुत्र में योग्यता और संचालन-क्षमता का अभाव रहता, तो उसीके वंश के अन्य योग्य व्यक्ति को वह सन्मान प्राप्त होता था। इससे शासन और व्यवस्था-क्षमता उसके परिवार में पोषित और विकसित होती रहती थी, क्योंकि शासन-व्यवस्था और ग्राम-सुरक्षा का उत्तरदायित्व उस पर रहता था। इसलिए प्रायः वह अंतिम कुल से लिया जाता था। कुछ स्थानों पर दूसरे वंश को भी यह प्रधानता प्रदान की जाती थी। बौद्ध-काल में उसीको राजा की तरह माना गया है। कुछ समय उसे बहुत सन्मान-भाजन भी माना जाता था। यह लगभग एक हजार वर्ष पूर्व तक चलता रहा है। इस ग्राम-प्रधान को करों से मुक्त रखा जाता था और उसके चरितार्थ या उपयोग के लिए भूमि प्राप्त होती थी। संभव है, यही किसी काल में 'भूमि-पाल' कहा गया हो। जातक-कथाओं में इस अध्यक्ष को राजा की तरह वर्णित किया गया है। इससे यह आभास मिलता है कि आज से २५०० वर्ष पहले से ही उसमें राजत्व की भावना निहित हो गयी थी। राज्य-संस्था का विकास इसी तरह हुआ होगा।

ग्राम-सभा का विधायक

ग्राम-सभा का समस्त हिसाब-किताब और कार्य-व्यवस्था रखने वाला विधायक कर्मचारी होता था और वह भी करमुक्त भूमि का उपयोग करता था, उसकी भी पारिवारिक परम्परागत नियुक्ति की जाती थी। अध्यक्ष और विधायक, दोनों ही **जनता के प्रति उत्तरदायी रहते थे** और उनका विश्वास सम्पादन करते रहते थे। यद्यपि उनका सम्बन्ध शासन से बना रहता था, परन्तु ये जनता और शासन के बीच 'कड़ी' का काम करते थे। किन्तु ये अपने पद का दुरुपयोग या मनमानी कभी नहीं कर सकते थे, इन्हें अपनी परम्परागत स्थिति और प्रतिष्ठा का ध्यान रहता था। इन्हें सारी व्यवस्था ग्राम के वृद्ध-जनों के परामर्श के अनुसार ही करनी पड़ती थी। फिर भी ग्राम–सभा या ग्रामाध्यक्ष-विधायक में कोई अधिकार भावना अथवा शासकीय ठसक नहीं रहती थी। **जिस प्रकार एक परिवार का प्रमुख अपने परिवार को नियमित, नियंत्रित और सुरक्षित रखने का प्रबन्ध करता है, उसी प्रकार ग्रामणी तथा ग्रामवृद्ध भी ग्रामहित एवं आत्मीय एकता के साथ उनका अभिन्न अंग होकर ही कार्य करता था।** अनेक ग्रामों में यह प्रथा अब तक भी प्रचलित रही है। ग्राम-प्रमुखों की आज्ञा को अन्तिम निर्णय की तरह स्वीकार किया जाता था। वह केवल ग्राम-व्यवस्था को ही नियंत्रित-नियमित नहीं रखता था, बल्कि ग्रामजनों की सामाजिक नैतिक और चारित्रिक स्थिति पर पूरी सावधानी से ध्यान रखता था। उसके सात्त्विक रोष तथा नैतिक भय का ग्रामजनों को ध्यान रखना पड़ता था। ग्राम-चरित, आचार-विचार-व्यवहार-मर्यादा के आदर्श रखने पर ग्रामाध्यक्ष का प्रभाव बहुत काम करता था। किसीके साथ अन्याय न हो, विवेकपूर्ण निर्णय हो, यह सदैव ध्यान में रखा जाता था। गृहस्थों में जो उलझनें उत्पन्न होतीं, उन्हें पिता और अभिभावक की तरह निबटाना और सन्मानपूर्वक उसकी आज्ञा का प्रतिपालन धर्म समझा जाता था। पारिवारिक, सामाजिक और साम्पत्तिक अधिकारों की वह देखभाल करता था, ग्रामजन उनके निर्णयों को सादर सन्मान्य समझते थे। उसकी भूल हो जाने पर ग्रामवृद्ध-जन उसे सुधारते रहते थे।

ग्राम-सभा का क्षेत्र और विस्तार

देश के विभिन्न भागों में ग्रामसभा का विस्तार हो गया था। मालव-प्रदेश में ग्रामसभा की तरह मध्यकाल में पंचायतों का विस्तार हो गया था। राजस्थान में भी पंच या महंत के रूप में सभा का कार्य संचालित होता था। गुप्त-काल और उसके पश्चात् ग्रामसभा (पंचायत-प्रथा) का प्रभाव-क्षेत्र बढ़ गया था। **ये अत्यन्त सुव्यवस्थित रूप से शासन से सर्वथा स्वतंत्र रह कर, अपने में संपूर्ण शक्ति केन्द्रित कर चलती थीं। केन्द्रीय और प्रादेशिक शासनों में कैसे भी परिवर्तन क्यों न होते रहें, इन संस्थाओं की कार्य-प्रणालियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।** धीरे-धीरे इन संस्थाओं की विभिन्न-समितियाँ उसीके अंग बन कर कार्य करती रहती थीं और ग्राम-संस्था का चुनाव भी होने लगा था। मध्ययुग में उनके निर्वाचन की यह प्रथा थी कि ग्रामजन उम्मीदवार का नाम ठीकरी पर लिख कर एक घड़े में डाल देते थे और वह घड़ा ग्राम-वृद्धों की उपस्थिति में खोल दिया जाता था। **इसमें जाति या वर्ग का कोई भेद नहीं माना जाता था।** ग्राम-वृद्ध या ग्रामाध्यक्ष असंस्कृत नहीं रहते थे। वे अनुभव, ज्ञान और कुछ-शील से सम्पन्न लोग होते थे। योग्य नागरिक बनाने में वे किसीसे पीछे नहीं रहते थे। हाँ, छल-छिद्र, कपट उनमें नहीं रहता था। मध्ययुग के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि ग्राम की जनता असभ्य और असंस्कृत नहीं रही थी। परमार-कालीन मालव में अशिक्षित या असंस्कृत कोई व्यक्ति नहीं रह सकता था। 'कोविद ग्रामवृद्धान्' शब्द में उनकी संस्कारिता के दर्शन होते हैं। जिस देश के दिव्यद्रष्टा आचार्य ऋषि-मुनि, आश्रम-जीवन व्यतीत करते थे, नगर से दूर रहते थे, उनके निकट के ग्रामों के जीवन पर उनके ज्ञान, आचार और व्यवहार का सात्त्विक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। वहाँ के वातावरण में अज्ञान कैसे रह सकता था? ग्राम-संस्थाओं के सम्बन्ध में कई उल्लेख ऐसे मिलते हैं कि वहाँ वेद, शास्त्र, पुराण आदि के अध्ययन में उक्त संस्थाओं के सहयोग से ग्रामजनों ने लाभ लेकर ज्ञानार्जन किया था। (दक्षिण-भारत के शिलालेखों की रिपोर्ट १८९७, १९१७ देखिये)। कालिदास व भास आदि के नाटकों में ग्रामीण पात्रों की योग्यता का निर्देश मिलता है। उपनिषद् और पुराणों के वर्णनों से भी यही ज्ञात होता है कि हमारे देश की ग्रामीण जनता कितनी स्वावलंबी, सात्त्विक, सुसंस्कृत, सच्चरित्र, विवेकी और विनय-शील रही है।

('नवशक्ति' से सादर)

हमें विश्वास है कि सभी प्राणी ब्रह्म हैं। प्रत्येक आत्मा मानो बादल से ढँके हुए सूर्य के तुल्य हैं और एक मनुष्य से दूसरे का अन्तर केवल यही है कि कहीं सूर्य के ऊपर बादलों का घना आवरण है और कहीं कुछ पतला। हमें विश्वास है कि सब धर्मों की यही नींव है, चाहे कोई उसे जाने या न जाने। मनुष्य की भौतिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति के सारे इतिहास का मूल तत्त्व यही है कि आत्मा का स्वरूप कभी प्रकट और कभी गुप्त होता चला आया है।

—विवेकानंद

www.vinoba.in

मानवता अविभाज्य है

(केदारनाथ गोस्वामी)

बात पिछली लड़ाई के दिनों की है। लड़ाई करीब-करीब खत्म हो चली थी। फिर भी गाड़ियों में कितनी बेतरह भीड़ हुआ करती थी, यह आपमें से उन सब लोगों को पता होगा, जिन्हें कुसंयोगवश उन दिनों रेलगाड़ी के डिब्बों में बोरों की तरह लद कर कहीं आना-जाना पड़ता रहा होगा।

दुर्भाग्य का मारा मैं भी कलकत्ते से एक जगह जाने के लिए विवश हुआ। करता क्या ? गाड़ी के सिवा दूसरा कोई साधन नहीं था। एक डाकगाड़ी में ड्योढ़े दरजे का टिकट लेकर मैं सवार हुआ। ऐसा लगता था कि गाड़ी में तिल रखने की भी जगह नहीं है। किसी तरह मैं डिब्बे में घुसा तो जरूर, पर वहाँ खड़े हो पाना भी मुश्किल था। जिसने जो जगह घेर ली थी, उसका वह अपने को मालिक मान बैठा था और दूसरों के लिए थोड़ी गुंजाइश कर देने की वह कोई जरूरत नहीं समझता था।

न जाने क्यों, मुझ पर तरस खाकर एक सज्जन ने थोड़ी जगह मुझे दी और कहा कि आप तो बैठ ही जाइये। मैं बैठ गया। गाड़ी चली। मैं बड़ी देर से देख रहा था। एक सज्जन, जो खाकी वर्दी पहने हुए थे, बहुत परेशान होकर इधर-उधर उलट-उलट कर देख रहे थे कि किसीको तो दया आ जाय और उनसे भी कह दें कि आओ भाई, तुम भी बैठ जाओ। लेकिन काहे को किसीको तरस आये ? सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। मुझसे न रहा गया, मैंने अपने को थोड़ा सिकोड़ लिया और कहा—'आइये, हम दोनों इतनी ही सी जगह में बैठ लें।' सहानुभूति का कितना बड़ा असर होता है, यह मैंने उस दिन देखा। उस आदमी को मैंने तकलीफ उठाते देखा। मुझे उसके प्रति सहानुभूति हुई; और मैंने उसे अपने पास बिठाया। उसने कुछ कहा तो नहीं, आकर बैठ गया, पर मैंने अपने प्रति कृतज्ञता का भाव उसकी आँखों में पढ़ लिया।

थोड़ी देर के बाद हम एक-दूसरे से बातें करने लगे और हमारे बीच दुनिया भर की चर्चाएँ छिड़ गयीं। बातचीत के सिलसिले में यह मालूम हुआ कि वह पंजाबी मुसलमान है और मुस्लिम लीग तथा पाकिस्तान का कट्टर हिमायती। और मैं; मैं कभी चाहता भी नहीं था कि हिन्दुस्तान के टुकड़े हों !

असली चीज : मनुष्यता

हमारी बातें इधर-उधर घूम-फिर कर अब राजनीति पर आ गयीं। वह कहने लगा कि मुसलमान गैरमुसलमानों से मूलतः–प्रकृत्या–भिन्न हैं और ऐसी हालत में यह बिलकुल जरूरी है कि भारत के मुसलमानों की अपनी एक अलग रियासत हो। मैं क्यों इसे स्वीकार करता ? मैंने भी अपना तर्क उपस्थित किया। मैंने कहा कि चाहे वह मुसलमान हो, चाहे गैरमुसलमान, वह चाहे तो अपना मजहब या और ऐसी बहुत-सी बातें बदल ले सकता है, लेकिन मानव-प्रकृति या मनुष्यता बदल लेने की चीज नहीं है। अगर आदमी चाहे, तो दूसरी भाषा अपना कर वह अपनी भाषा बदल सकता है, किसी दूसरी जाति वालों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर अपनी जाति बदल सकता है, लेकिन वह अपनी मूल प्रकृति नहीं बदल सकता। ऐसी हालत में जो खास चीज है, वह मानव-प्रकृति है, उसकी मनुष्यता है; और मनुष्य के जीवन में यदि कोई स्थायी चीज है, तो वह यही है।

उसे हमारी बातें स्वीकार न हुईं और हम एक-दूसरे से उलझ पड़े।

थोड़ी ही देर बाद हमारी बातों का सिलसिला बदल गया और हम राजनीति से साहित्य की ओर ढल पड़े। चर्चा का विषय हो गया, फारसी साहित्य। हम दोनों की रुचि का विषय अब एक ही हो जाने से हमारे मन की कड़ुवाहट मिट गयी और हम फिर दोस्त हो गये। बातों-बातों में ही मैंने उससे कहा कि मैं एक अरसे से उमर खय्याम की फारसी 'रुबाइयात' के लिए परेशान हूँ, किन्तु आज तक मुझे उसकी कोई प्रति नहीं मिली। उसने मेरा पता पूछा और कहा—"मैं आपको किताब जरूर भेजूँगा।" अगले जंक्शन पर हम दोनों गाड़ी से उतरे और मानव-समुद्र के उस हंगामे में कौन किधर चला गया, एक-दूसरे को पता नहीं।

जैसा कि धर्मशालाओं और रेल के डब्बों की दोस्ती में बराबर होता आया है, 'अदर्शनम् लोप' वाली स्थिति यहाँ भी हुई। वह आँख से ओझल हुआ और दिमाग से भी ओझल हुआ। लेकिन बरस भर के बाद जब मुझे लाहौर से एक पारसल मिला, तो मैंने बड़ी हैरत से उसे खोल कर देखा। आप जरा सोचिये कि मेरे हर्षमिश्रित आश्चर्य का उस समय क्या हाल रहा होगा, जब मैंने देखा कि उस पारसल के अन्दर उमर खय्याम की फारसी रुबाइयात की किताब पड़ी हुई है ! मैं सोचने लगा कि आखिर वह कौन-सी बात है, जिससे उसको मेरी याद आयी और मेरे साथ ही अपने उस वादे की भी। और तब मैंने पाया कि यह मानव-प्रेम ही है, जिसने उसके दिमाग में मुझे बनाये रखा। मानव-प्रेम ने निश्चय ही जाति, धर्म और राजनीति के भेदों पर विजय पायी थी। वह पारसल पाकर मेरी यह धारणा और भी पुष्ट हो गयी कि मनुष्य-मनुष्य के बीच में भेद की चाहे कितनी भी चौड़ी खाई बन जाय, मानव की प्रकृति या मानवता में भेद नहीं पड़ सकता, वह अविभाज्य ही है और सदा रहेगी।

['मैनकाइंड' से साभार]

युद्धों का नतीजा

(वी. जी. देसाई)

इतिहास के गहरे अध्ययन के फलस्वरूप प्रो० ट्वानबी इस विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुँचे कि "सैनिकशाही आत्मघातक होती है।" मूल्यवान मत रखने वाला कोई भी व्यक्ति इस विचार का विरोध नहीं करेगा कि वह सभ्यताओं के पतन का भी एक सामान्य कारण होती है। असीरियावासियों ने नगरों को लूटा तथा अपने अस्त्रबल से जनता को मिटा दिया, परंतु अंत में उनकी यही विजय उनके पतन का कारण बनी; क्योंकि तथाकथित 'अस्त्रसज्जित पुरुषों' ने असीरिया को समूल नष्ट कर दिया था।" आगे प्रो० ट्वानबी ने कहा—"लूटेरों का आपस में एक-दूसरे के लिए 'किलकनी' बिल्लियों के समान तब तक "मैत्री-सृजन" होता है, जब तक कि उनमें से एक भी लूट के माल का उपभोग करने के लिए शेष नहीं रह जाता।"

इतिहास में सुंद और उपसुंद नामक राक्षसों की कहानी से मिलती हुई घटनाएँ कई स्थलों पर घटी हैं। उदाहरणार्थ, अरब बारह वर्ष तक विजयी बना रहा, किंतु उसके बाद उसे चौबीस वर्ष तक भाइयों के गृहयुद्ध में फँसा रहना पड़ा। यह गृहयुद्ध सन् ६५६ में खलीफ़ा उस्मान से प्रारंभ हुआ तथा सन् ६८० में खलीफ़ा के पौत्र हुसेन की मृत्यु के साथ समाप्त हुआ। नयी दुनिया के विजेता स्पेनवासी भी उसी गति को प्राप्त हुए। स्पेनवासी जो सम्पत्ति मध्य एवं दक्षिणी अफ्रीका से लूटकर लाये थे, वह युरोप में ही धार्मिक युद्ध को लड़ने वाले किराये के टट्टुओं पर खर्च की गयी थी। इसी प्रकार सिकन्दर का एकत्र किया हुआ खजाना भी ग्रीस के ही युद्ध-स्थलों पर व्यय किया गया था।

सर्वप्रथम सेनाशाह विजय पाता है। फिर उसके ऊपर विजय का नशा सवार होता है। इसी नशे के कारण वह अपने मानसिक एवं नैतिक संतुलन को खोकर विध्वंस-कार्य में घुसता है और अन्त में जब उसकी अन्ध प्रेरणा उसे असम्भव की ओर घसीट ले जाती है, तो वह अवश्य ही पतन के गर्त में गिरता है। इतिहास में अतिक्रम, अत्याचार एवं पतन नामक कड़ियों की एक घातक शृङ्खला बतायी गयी है। महाभारत में भी लिखा है—

'अधर्मेणैधते नरः ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्मान् जयति समूलं तु विनश्यति॥'

गोलियत दैत्य की गणना छोटे-से डैविड के साथ की जाती है। उत्थान के समय भीषण कवचधारी नीच मारा जाता है, किन्तु छोटा मुलायम बालों वाला मेमना जीवित बच जाता है। वे व्यक्ति, जो तलवार उठाते हैं, तलवार के साथ ही समाप्त हो जाते हैं और जो नम्र होते हैं, वे पृथ्वी के उत्तराधिकारी होते हैं।

पदयात्रा का एक अनुभव

पिछले दिनों १६ जुलाई से १६ सितंबर तक ३०० मील की भूदान की पदयात्रा हुई। इसके पूर्व भी ७५० मील की यात्रा हो चुकी है। कुछ भूमिदान, संपत्ति-दान-पत्र और साहित्य-बिक्री का काम हुआ। मुख्य अनुभव यह आया कि लोग उत्साहपूर्वक भूदान का संदेश सुनते हैं। उनमें एक नयी आशा जगने लगी है। सन् '५७ तक ग्रामराज्य की स्थापना करने का ध्येय उन्हें बड़ा खींचता है। आज की शासन-प्रणाली से वे बहुत उकता गये हैं। वे चाहते हैं कि किसी तरह से इसमें से बच निकलें। कोई शोषक और शोषित न रहे, यह बात उन्हें जँच जाती है, लेकिन कुछ अपनी लाचारियों से और कुछ परिस्थिति से वे चुप रहते हैं। अगर हम अपना सही विचार सही रूप में उनके सामने प्रस्तुत करें, तो हमारा विश्वास है कि आगामी अहिंसक क्रांति के लिए जनमानस तैयार हो सकेगा, बशर्ते कि हमारा भी जीवन वैसा ही त्याग-तपस्यामय बने।

एलनाबाद (हिसार) —फतहचंद नाहटा

www.vinoba.in

गांधी-जयंती के विशेष संदेश

—सिंगापुर-वामपक्षी जनसंघर्ष-दल के सचिव श्री ली कुआन यू ने कहा, "मलाया को अपने स्वाधीनता-संग्राम के लिए अहिंसा और असहयोग के शस्त्रों को ही अपनाना चाहिए।"

—चाऊ एन लाय ने पेकिंग में कहा, "चीन की जनता गांधीजी की स्वावलंबन और सादे रहन-सहन की शिक्षा ग्रहण कर सकता है।"

—डॉ० आंबेडकरजी ने कहा, "अगर गांधीजी न होते, तो भारत की राजनीतिक क्रांति इतनी सहजता व शीघ्रता से प्राप्त हो नहीं सकती थी।

कोरापुट में शिक्षण के प्रयोग

इंजीनियरिंग का क्लास कोरापुट में शुरू हो गया है। पचीस विद्यार्थी उसमें आ गये हैं। सारे विद्यार्थी स्थानीय हैं। आज जिस तरह से वर्ग का काम शुरू हुआ है, उस पर से यह ओवर-सियर्स क्लास (overseers' class) सफल होगा, ऐसी आशा है।

'सॉइल कन्ज़रवेशन' (भूमि-रक्षण) का क्लास कोरापुट में ही शुरू करने का विचार है। उसमें ३० विद्यार्थी लिये जायेंगे। 'सॉइल कन्ज़रवेशन' का कोर्स ३ माह का रखा गया है।

अगले माह बुर्जा में—जो कोरापुट से ३७ मील दूर है—खेती-शिक्षा का क्लास भी शुरू हो रहा है। यह भी एक साल का कोर्स है। उसमें २० से २५ विद्यार्थी लेने का विचार है। शिक्षक आदि जुटाने का काम पूरा हो गया है।

ग्रामदानी गाँवों में से आदिवासियों के लड़के चुन कर बुनियादी या उत्तर बुनियादी—जैसा एक साल से दो साल तक का एक कोर्स भी शुरू करने का विचार चल रहा है। १६ से १८ साल के लड़के उसमें लिये जायेंगे। वे सारे अनपढ़ होंगे। विवाहित होंगे, तो उनकी पत्नियाँ भी बुलायी जायेंगी। ये लोग एक नयी बस्ती तैयार करेंगे। १००–२०० एकड़ जमीन तोड़ेंगे, मेड़ें बांधेंगे, घर-मकान आदि बनायेंगे। सिंचाई-व्यवस्था का काम भी वे उस क्षेत्र में करेंगे। दो-चार सौ एकड़ जमीन लेकर उसको आबाद करना, एक ग्राम-निर्माण करना, सुन्दर खेती बनाना, दो साल में पूरी खेती की तालीम पाना, साथ-साथ लिखा-पढ़ी भी सीखना, बाद में अपने गाँव में जाकर ग्रामसेवक के नाते काम करना, इस तरह का कोर्स शुरू करने का विचार है। इसके लिए भी शिक्षक जुटाये गये हैं।

इसके अलावा (यहाँ के निर्माण-काम के आधार पर और उसके जरिए) बढ़ई-गिरी, लुहारी, तेलघानी, कुम्हार का काम आदि ग्रामोद्योग का शिक्षण-क्रम भी दिसम्बर से शुरू हो सकेगा। सौ-पचास लड़के उनमें लिये जायेंगे।

इस तरह हर साल करीब २०० नवजवान तैयार होंगे और स्थानीय नेतृत्व इसमें से खड़ा हो सकेगा, ऐसी आशा है।"* —अण्णासाहब सहस्रबुद्धे

* श्री सिद्धराजजी के नाम आये ता० ३१।८।५६ के पत्र से।

नयी तालीम के शिक्षकों की आवश्यकता

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने शिक्षा में आमूल क्रांति के प्रयोग तथा प्रसार के उद्देश्य से बिहार के मुंगेर जिले में श्रमभारती-खादीग्राम की स्थापना की। पिछले चार साल उस केन्द्र के बुनियादी संघटन में लगे हैं। अब वह प्रत्यक्ष प्रयोग और शिक्षण में लग रहा है। लेकिन यह काम कुछ इने-गिने कार्यकर्ताओं का नहीं है! देश के हजारों चरित्र के धनी और शिक्षा के प्रेमी नवयुवकों को इस काम में लगने की आवश्यकता है। जो नवजवान क्रांति का दर्शन करना चाहते हैं, उनसे मेरा निवेदन है कि वे सामने आयें।

शिक्षण सूक्ष्म कला है, जिसके लिए लगन और धैर्यपूर्वक अभ्यास की जरूरत है। अतः ऐसे सब नवजवानों को, जिनमें शिक्षण द्वारा समाज-निर्माण की रुचि और प्रवृत्ति है, मेरा आमंत्रण है कि वे इस प्रयोग में मेरे साथ शामिल हों। शामिल होने वाले साथियों की शैक्षणिक योग्यता इंटरमीडियेट एवं कला, विज्ञान या बेसिक में उत्तर बुनियादी तक की होनी चाहिए। एक साल की ट्रेनिंग के बाद योग्यतानुसार उचित वेतन पर प्रत्यक्ष शिक्षण का काम दिया जायेगा। शिक्षण-काल में छात्र-वृत्ति की व्यवस्था रहेगी। इस संबंध में विशेष जानकारी के लिए पत्र-व्यवहार श्री राममूर्ति, आचार्य, श्रम-भारती, पो०—खादीग्राम, जिला—मुंगेर (बिहार) से किया जाय। आवेदन-पत्र भेजने की अंतिम तिथि ३१ अक्टूबर १९५६ है।

श्रम-भारती, २१-९-५६ —धीरेन्द्र मजूमदार, अध्यक्ष, सर्व-सेवा-संघ

उरुली के प्राकृतिक केंद्र की सूचना

हम उरुली के आश्रम में गरीब, मध्यम और धनी मरीजों की सेवा करते हैं। गरीब मरीजों से व्यवस्था-खर्च के रूप में कुछ नहीं लेते। उनका भोजन-खर्च भी जरूरत पड़ने पर संस्था उठाती है। मध्यम वर्गियों से कमरे के भाड़े (५ रुपये से २५ रुपये तक) के अलावा व्यवस्था-खर्च व फीस उसकी सामर्थ्य के अनुसार ३० रुपये से १०० रुपये तक ली जाती है। धनिक मरीजों से पूरा खर्च (१०० रुपया और कमरे का भाड़ा) लेते हैं। रचनात्मक कार्यकर्ताओं से व्यवस्था-खर्च एवं भाड़े के रूप में आधा शुल्क यानी साढ़े सत्रह रुपये ही लिये जाते हैं। भोजन का खर्च इन सबसे अलग है।

आश्रम की कार्यकर्त्री-समिति की बैठक ता० २२-७-५६ को हुई थी। उसमें तय हुआ कि **जीवनदानी भूदान-कार्यकर्ताओं से व्यवस्था-खर्च आदि बिलकुल न लिया जाय।** उनसे केवल भोजन, दूध, फल आदि का ही जितना खर्च हो, लिया जाय।

निसर्गोपचार आश्रम, उरुली कांचन (पुणे) —व्यवस्थापक

भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण

नाग-विदर्भ में सामूहिक भूमि-वितरण

वर्धा : पूर्व निश्चयानुसार नागविदर्भ के आठ जिलों के पंद्रह सौ गाँवों में पंद्रह हजार एकड़ के वितरण का कार्यक्रम बहुत उत्साहपूर्वक संपन्न हुआ। अभी तक यद्यपि पूरा विवरण हमारे कार्यालय में पहुँचा नहीं है, जो कुछ थोड़ी खबरें मिली हैं, वे बहुत उत्साहजनक हैं। वर्धा के इर्दगिर्द के गाँवों में, खास तौर पर वर्धा तथा आष्टी तहसील में सेवाग्राम, महिलाश्रम तथा खादी-ग्रामोद्योग महाविद्यालय के कार्यकर्ता उपस्थित थे। अकोला जिले में प्रो० बंग स्वयं हाजिर थे। आष्टी में चालीस एकड़ भूमि का वितरण विनोबाजी के मंत्री श्री दामोदरदासजी मूंदड़ा के हाथों हुआ। नव्वे भूमिहीनों ने भूमि के लिए आवेदन-पत्र भरा था, किंतु जमीन तो केवल दस परिवारों के लिए ही पर्याप्त थी। उनकी अपील पर अस्सी लोगों ने अपने नाम वापस ले ही लिये। ग़रीब भूमिहीन लोगों की उदारता को देख कर कॉलेज के शिक्षार्थी प्रोफेसर लोग तथा ग्राम के भूमिवान, सभी बहुत प्रभावित हुए। साढ़े आठ बजे प्रार्थना के साथ कार्यक्रम प्रारंभ हुआ था। करीब डेढ़ बजे तक सारी कार्रवाई चलती रही। भूमिवानों ने अन्नदाताओं को अपने हाथों तिलक, मालाएँ तथा प्रसाद और अधिकार-पत्र प्रदान किये।

श्री मूंदड़ाजी ने अपने भाषण में जनता से पूछा: जो "अद्भुत क्रांतिकारी दर्शन लोगों ने देखा, क्या किसी कानून द्वारा वह संभव हो सकता था? भूमि-हीन भाइयों को भूमि दिलवाने का और कौनसा मार्ग हो सकता है, जो गाँव के लोगों में भूमिवितरण के साथ-साथ प्रेमभाव निर्माण कर सके—टूटे दिलों को जोड़ सके?

"यदि विनोबाजी का यह भूदान-आंदोलन इस देश में नहीं होता, तो यहाँ खून की नदियाँ बहतीं! इस देश के भूमिवानों ने, शासकों ने, कार्यकर्ताओं ने सभी को इसे महसूस किया है। यह खुशी की बात है कि इस आंदोलन में सार्वभौम सहयोग मिल रहा है। परन्तु आज की तरह सारे देश में किसी एक ही रोज भूमि का बँटवारा हो जाना हो, और अगर वह आगामी गांधी-जयंती तक होना हो, तो देश के सभी विचारवान लोगों को अपनी पूरी ताकत इसमें लगा देनी चाहिए। बिना भूमि के बँटवारे के आंतरिक शांति संभव नहीं और बिना आंतरिक शांति के विश्व-शांति की हमारी भावना बलवती और फलवती नहीं होने वाली है।"

वितरण के रोज कई स्थानों पर नयी जमीन भी भूदान में मिली।

वर्धा तहसील के कवठा गाँव में वितरण-कार्य का प्रत्यक्ष अनुभव अन्य स्थानों के समस्त ही कार्यकर्ताओं को दिया गया था। उस वक्त ४५ लोगों के नाम सामने आये। लेकिन ४० एकड़ भूमि सिर्फ ६ परिवारों को ही दे सकते थे। श्री वसन्तराव बोंबटकर ने मजदूरों को समझाया कि "सबको जमीन की भूख है, यह सिद्ध बात है। लेकिन इस समय त्याग-बुद्धि से अपने बंधुओं के लिए ही कुछ लोगों को नाम पीछे लेने पड़ेंगे।" इस पर २० लोगों ने नाम वापस ले लिये, शेष में से ६ नाम चिट्ठी डाल कर चुन लिये गये।

भूमि-प्राप्त मजदूर किसानों को बीज, हल, बैल, श्रमदान देने का भी अन्य मजदूर भाइयों ने आश्वासन दिया।

www.vinoba.in

बिहार

भागलपुर जिले में सामूहिक पदयात्रा

भागलपुर जिले में सुलतानगंज में जिला भूदान-यज्ञ-समिति की ओर से सामूहिक पदयात्रा का आयोजन २ अक्टूबर से किया गया। पूर्वतैयारी के लिए विभिन्न स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थियों, पार्टियों और सभी भूदान-कार्यकर्ताओं का शिविर लिया गया। शिविर का उद्घाटन बिहार राज्य के यातायात एवं सूचना-मंत्री श्री महेश-प्रसाद सिंहजी ने किया। भूदान-कार्यकर्ताओं की ४ टोलियाँ सुलतानगंज थाने के ६५ गाँवों में पदयात्रा के लिए निकल पड़ी। सुलतानगंज थाने की यात्रा के समाप्त होने पर साहकुण्ड थाने में कार्यक्रम चलाया जायगा।

बिहपुर, गोपालपुर, नवगछिया थाने में गांधी-जयंती के निमित्त विशाल आयोजन किया गया। श्री अवधकिशोर सिंहजी ने एक सप्ताह की पदयात्रा की। ७० बीघा भूदान और १०००) रु० के संपत्तिदान-पत्र मिले।

भागलपुर जिला अंतर्गत बाँका डाक-बंगले में ता. २९ सितंबर को भूमिवितरण समारोह हुआ, जिसमें ३६ हरिजन, २४ आदिवासी एवं ७४ अन्य भूमिहीन परिवारों में १८१ एकड़ भूमि का वितरण किया गया।

गया जिले में सामूहिक पदयात्रा

गत २ अक्टूबर, ५६ को गांधी-जयंती के अवसर पर गया जिले के मखदुमपुर थाने में भूदान-कार्यकर्ताओं की सामूहिक पदयात्रा शुरू हुई। एक दिन पूर्व, पहली अक्टूबर को मखदुमपुर में जिले के कोने-कोने से आये हुए भूदान कार्यकर्ताओं का एक शिविर गया जिला भूदान-यज्ञ-समिति के अध्यक्ष श्री गौरी शंकर शरण सिंह के सभापतित्व में हुआ। शिविर में अ० भा० सर्व-सेवा-संघ के श्री कृष्णराज मेहता भी शरीक हुए। इस अवसर पर शाम को एक आम सभा भी हुई, जिसमें उक्त नेताओं ने सर्वोदय एवं भूदान-यज्ञ के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए गांधी-जयंती के दिन से शुरू होने वाली सामूहिक पदयात्रा के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। उस दिन रात भर पदयात्रा की तैयारियाँ होती रहीं। दूसरे दिन प्रातःकाल अद्भुत उत्साह के साथ कार्यकर्ताओं की प्रभात फेरी निकली। लगभग १० बजे कार्यकर्ताओं की टोलियाँ शानदार पोस्टरों, पर्चों एवं नवीनतम सर्वोदय-साहित्य से लैस होकर गगनभेदी नारों एवं क्रान्तिकारी गीतों के साथ गाँव-गाँव की ओर निकल पड़ीं। जाने के पहले उनके मस्तक पर मंगल-तिलक लगाया गया और एक उत्साहपूर्ण वातावरण के बीच उन्हें विदाई दी गयी। पदयात्रियों की ये टोलियाँ १३ अक्टूबर, ५६ को मखदुमपुर वापस आवेंगी। ता० १५-१६ को उनका तथा उनके साथ आये हुए नये लोगों का एक शिविर होगा, जिसमें कार्यकर्तागण अपनी पदयात्रा के अनुभव जाहिर करेंगे और फिर १७ तारीख को सघन पदयात्रा के लिए गाँव-गाँव में निकल जायेंगे। इस थाने में उनकी पदयात्रा आगामी २४ अक्टूबर, ५६ को समाप्त होगी और २५ अक्टूबर को भूदान-यज्ञ में तब तक प्राप्त कुल भूमि का जन-आधारित वितरण सारे थाने में हो चुकेगा। १७ अक्टूबर को ही कार्यकर्ताओं की कुछ टोलियाँ निकटवर्ती थानों में पदयात्रा के लिए निकल जायेंगी और वहाँ भी इसी प्रकार शिविर तथा पदयात्राओं का क्रम चलेगा। २५ अक्टूबर के बाद कार्यकर्ताओं का यह काफिला स्थानीय लोगों पर भूदान-कार्य का भार सौंप कर आगे निकल पड़ेगा।

बिहार-भूदान-यज्ञ-समिति

बिहार प्रांतिक भूदान-कार्यकर्ताओं का जो सम्मेलन ता. २८ सितंबर '५६ को पटना में हुआ, उसने सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव द्वारा सर्व-सेवा-संघ से प्रार्थना की है कि वह पुरानी जो बिहार भूदान-यज्ञ-समिति (श्री लक्ष्मी बाबू, संयोजक; सदस्य : श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी, श्री गौरीशंकर शरण सिंह, श्री रामदेव ठाकुर और श्री जयप्रकाश नारायण) गठित थी, उसीको पुनः मनोनीत करें और समिति को दूसरे नये सदस्यों को लेने का भी अधिकार दिया गया।

इस सम्मेलन ने सारे प्रांत भर में जन-आधारित भू-वितरण, विभिन्न दान-प्राप्ति और साहित्य-प्रचार की मुहिम का भी निश्चय किया तथा प्रांत भर के लोगों से सहयोग देने की अपील की।

प्रस्तुत सम्मेलन में प्रांत भर के १५० के करीब कार्यकर्ता उपस्थित थे।

विनोबाजी के जन्म-दिन पर—

विनोबा-जयंती के निमित्त अ. भा. सर्व-सेवा-संघ, गया के कार्यकर्ताओं के बीच श्री वल्लभस्वामीजी द्वारा किया हुआ निवेदन :

"हमारी संस्थाएँ जन-आधारित कैसी बने, उस दिशा में सूत्रदान एक महत्त्व का कदम है। हममें से हर कोई ६२ या ३१ गुंडियाँ या और कोई हिस्सा अपने हाथ के कते सूत का विनोबा को उनकी अगली जयंती तक समर्पण करने का निश्चय करे। यह करना कठिन नहीं है। विनोबाजी को आश्रम में जब पहले-पहल तकली दी गयी, तो उन्होंने शुरू दिन से ही १६० तार हर रोज कातने का निश्चय कर लिया, जिसके लिए उन्हें प्रारंभ में काफी घंटे देने पड़ते थे, क्योंकि उन दिनों में तकली कताई का विकास होना बाकी था। अब तो तकली पर की गति काफी बढ़ चुकी है। इस तरह जब एक निश्चय कर लिया जाता है, तो काम अवश्य पूरा होता है।"

विनोबाजी का पदयात्रा-कार्यक्रम

(जिला कोइंबतूर, तहसील पल्लडम्)

अक्टूबर ता.	समय	पड़ाव	डाकघर	रेलवे-स्टेशन
१३	सुबह	नागलिंगपुरम्	नागलिंगपुरम्	तिरुपुर
,,	शाम	वेलायुदमपालयम्	अलागुमलाई	,,
१४	सुबह	करट्टुपालयम्	पेरुंथोलुवु	,,
,,	शाम	अमरावतीपालयम्	पोल्लीकलीपालयम्	,,
१५	सुबह	बजाजनगर	वीरापांडी	,,
१६	सुबह	तिरुपुर (नंजप्पा हायस्कूल)	तिरुपुर	,,
१७	सुबह	गांधीनगर (जी. के. एस. कॉन्फ्रेन्स)	,,	,,
१८		,,	,,	,,
१९	सुबह	कनक्कपालयम्	कनक्कपालयम्	,,
,,	शाम	मोरात्तुपालयम्	मोरात्तुपालयम्	उथुकुली

पता :—१३ गांधीजी रोड, इरोड ERODE (Dist. Coimbtore)

पता :—एस. जगन्नाथन्, संयोजक, तमिलनाड भूदान-समिति

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	इहलोक की कामधेनु	राजाजी	१
२.	विनोबा का जन्मदिन	काका कालेलकर	२
३.	पंचायतन-युग का प्रारंभ	,, ,,	२
४.	ग्रामदान के बाद कोरापुट : ४	गोपबंधु चौधरी	३
५.	तू चलता चल !	माखनलाल चतुर्वेदी	३
६.	नयी तालीम का पच्चर और भूदान का हथौड़ा !	विनोबा	४
७.	मार्क्स-गांधी और विनोबा	शंकरराव देव	४
८.	विनोबाजी के साथ श्री अच्युतजी	निर्मला देशपांडे	५
९.	लोक-संकल्प की शक्ति	विनोबा	६
१०.	शुद्ध आनन्द की शर्त : संयम और बँटवारा	,,	६
११.	चावल के बारे में सरकार की दुमुँही नीति	जो. कॉ. कुमारप्पा	७
१२.	भूदान को जाति-भेदों पर भी प्रहार करना है !	विनोबा	७
१३.	सूतांजलि के प्रसार की सामूहिक योजना : २	कनु गांधी	८
१४.	भाषानुसारी प्रदेशों का आदर्श	विनोबा	८
१५.	भारत की पुरातन ग्राम-सभाएँ	पं० सूर्यनारायण व्यास	९
१६.	मानवता अविभाज्य है	केदारनाथ गोस्वामी	१०
१७.	युद्धों का नतीजा	वी. जी. देसाई	१०
१९.	फुटकर सूचनाएँ, भूदान-आंदोलन आदि	—	११-१२

सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी। फोन नं० १२८५

www.vinoba.in